केरल राज्य

बनाम

एम० के० कृष्णन नायर और अन्य

(The State of Kerala

Vs.

M. K. Krishnan Nair and Others)

तथा

के० सुकुमारन नायर और एक अन्य

बनाम

एम० के० कृष्णन नायर और अन्य

(K. Sukumaran Nair and Another

Vs.

M. K. Krishnan Nair and Others)

(14 फरवरी, 1978)

(मुख्य न्यायाधिपति एम० एच० बेग, न्यायाधिपति पी० एन० भगवती, वी० आर० कृष्ण अय्यर, एस० मुर्तजा फ़ज़ल अली, पी० एन० सिंघल, जसवन्त सिंह और वी० डी० तुलजापुरकर)

संविधान—अनुच्छेद 14 और 16—राज्य की न्यायिक सेवा को दो खण्डों, सिविल और दाण्डिक में विभाजित किए जाने और उनके लिए पृथक्-पृथक् नियम बनाए जाने से, विशेष रूप से जब विभिन्न न्यायिक पदों का पहले पूर्ण एकीकरण न हुआ हो, अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण नहीं होता ।

संविधान—अनुच्छेद 309 और 234—राज्य अपनी किसी भी सेवा में प्रशासनिक सुविधा के अनुसार जितने चाहे काडर बना सकता है और इसलिए राज्य की न्यायिक सेवा का दो खण्डों, सिविल और दाण्डिक, में विभाजन किया जाना और उनके लिए पृथक्-पृथक् नियम बनाया जाना राज्य की शक्ति में है ।

कानूनों और दस्तावेजों का निर्वचन— यदि किसी उपबन्ध के दो अर्थान्वयन हो सकते हों तो उसे असांविधानिक बनाने वाले निर्वचन को छोड़ दिया जाना चाहिए और उसे सांविधानिक बनाने वाले निर्वचन को अपनाया जाना चाहिए।

केरल राज्य का निर्माण 1 नवम्बर, 1956 से राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के अधीन पूर्ववर्ती मद्रास राज्य के मालावार क्षेत्र और पूर्ववर्ती ट्रावनकोर-कोचीन राज्य को मिलाकर किया गया था। नए केरल राज्य का निर्माण किए जाने पर पूर्ववर्ती मद्रास राज्य के मालावार क्षेत्र और ट्रावनकोर-कोचीन राज्य के न्यायिक पदों का एकीकरण किया जाना था और उसके लिए अनेक अनुदेश, आदेश और नियम समय-समय पर जारी किए गए थे। केरल राज्य ने 12 फरवरी, 1973 को या उसके आस-पास उच्च न्यायालय के परामर्श से राज्य में सिविल और दाण्डिक न्यायपालिका के दो पृथक्-पृथक् खण्ड बनाने का निश्चय किया। फलस्वरूप, केरल सिविल न्यायिक सेवा और केरल दाण्डिक न्यायिक सेवा के नाम से दो पृथक् सेवाएं गठित की गईं और उक्त दो नई सेवाओं के लिए पृथक् पृथक् नियम जारी किए गए। तारीख 12 फरवरी, 1973 वाले सरकारी आदेश द्वारा उन सभी सिविल न्यायिक अधिकारियों को दाण्डिक खण्ड में जाने का विकल्प दिया गया जो मूल रूप से मजिस्ट्रेट थे। पिटीशनर प्रत्यर्थी को 10 जून, 1958 को केरल न्यायिक सेवा में मुंसिफ के रूप में नियुक्त किया गया था और 1 जुलाई, 1961 से उसे उस पद पर पुष्ट किया गया था। मुंसिफ के रूप में काम करते हुए ही उसे उपखण्ड मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त किया गया था और कुछ समय के लिए उसने जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक) के पद का अतिरिक्त भार भी संभाला था। उसे पुनः मुंसिफ के रूप में अन्तरित कर दिया गया था। फिर उसे अधीनस्थ न्यायाधीश के रूप में प्रोन्नत कर दिया गया और उस पद पर उसे पुष्ट कर दिया गया। केरल न्यायपालिका का सिविल और दाण्डिक खण्डों में विभाजन होने का पर वह दाण्डिक खण्ड में जाने का विकल्प देने का हकदार नहीं रहा क्योंकि वह मूल रूप से मजिस्ट्रेट नहीं था। उसने विभाजन की स्कीम को उच्च न्यायालय में पिटीशन द्वारा प्रतिकूल विभेद के आधार पर चुनौती दी, क्योंकि केवल ऐसे न्यायिक अधिकारियों को दाण्डिक खण्ड में जाने का विकल्प दिया गया था जो मूल रूप से मजिस्ट्रेट थे, जबकि उस जैसे अधिकारियों को, जो मूल रूप से मजिस्ट्रेट नहीं थे, ऐसे

विकल्प से वंचित रखा गया था। उच्च न्यायालय ने पिटीशन इस आधार पर मंजूर कर लिया कि केरल राज्य में विभाजन की स्कीम से सम्पूर्ण न्यायिक सेवा का पूर्ण रूप से एकीकरण हो गया था और विभाजन की स्कीम विभेदकारी थी। इस पर प्रस्तुत अपील की गई। अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित--(मुख्य न्यायाधिपति एम० एच० बेग, न्यायाधिपति पी०एन० भगवती, वी०आर० कृष्ण अय्यर, एस० मुर्तजा फ़ज़ल अली, जसवन्त सिंह और वी०डी० तुलजापुरकर के अनुसार)--

इन तदर्थ नियमों का प्रवर्तन सीमित था और इनसे यह उपधारणा नहीं हो सकती कि मजिस्ट्रेट-पक्ष के पदों का सिविल पक्ष के पदों से सम्पूर्ण केरल राज्य में सरकारी आदेश संख्या एम०एस० 850 और 851 द्वारा होने वाले एकीकरण से अधिक साधारण एकीकरण हुआ था। मूल पिटीशनर की ओर से इस पहलू का प्रबल अवलम्ब लिया गया था कि नियम 5 में, सेवा के दो प्रवर्गों का उल्लेख करते हुए, अधीनस्थ न्यायाधीश अभिव्यक्ति की परिभाषा इस रूप में दी गई है कि उसमें 'ऐसा अधीनस्थ न्यायाधीश सम्मिलित है जिसे जिला मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त किया गया है' और मुंसिफ पद की परिभाषा इस रूप में दी गई है कि उसमें 'ऐसा मुंसिफ सम्मिलित है, जिसे उपखण्ड मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त किया गया है' और इस पहलू का भी अवलम्ब लिया गया है कि नियम 6 के अधीन अपर प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेटों और अधीनस्थ मजिस्ट्रेटों को मुंसिफ के रूप में नियुक्ति किया जा सकता था और पिटीशनर के अनुसार ये दो पहलू, जो नियम 5 और 6 से उत्पन्न होते हैं, स्पष्ट रूप से उपदर्शित करते हैं कि जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक) और उपखण्ड मजिस्ट्रेट के पदों का क्रमशः अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों से एकीकरण हुआ था। इस दलील को स्वीकार करना संभव नहीं है क्योंकि जिस रीति से नियम 5 में सेवा के दो प्रवर्गों का वर्णन किया गया है और जिस रीति से नियम 6 में सेवा के प्रत्येक वर्ग के लिए भर्ती के विभिन्न स्रोतों के उपबन्ध किया है, उनसे यह दर्शित होता है कि न्यायपालिका के सिविल पक्ष के अधिकारियों के रूप में अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों की मूल हैसियत को सुभिन्न रूप से बनाए रखा गया है। यह तथ्य कि 'अधीनस्थ न्यायाधीश'

अभिव्यक्ति में जिला मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त अधीनस्थ न्यायाधीश को सम्मिलित बताया गया है और मुंसिफ अभिव्यक्ति में उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के रूप में नियुक्ति मुंसिफों को सम्मिलित बताया गया है, स्पष्टरूप से यह दर्शित करता है कि नियम बनाने वाले प्राधिकारी का आशय यह था कि इस बात के होते हुए भी कि इन अधिकारियों की नियुक्ति जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक) या उपखण्ड मजिस्ट्रेट के रूप में की जा सकती है, वे सिविल पक्ष के न्यायिक अधिकारियों के रूप में अपनी हैसियत बनाए रखेंगे। तारीख 5 अक्तूबर, 1966 वाले केरल स्टेट ज्युडिशियल सर्विस रूल्स (स्पेशल रूल्स) यह बिल्कुल भी दर्शित नहीं करते कि जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के पदों का क्रमशः अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों से एकीकरण हुआ था या हुआ है। किसी भी सामग्री से, जिसका उच्च न्यायालय ने अवलम्ब लिया है, यह उपधारणा नहीं होती कि सम्पूर्ण केरल राज्य में न्यायिक सेवा का इस अर्थ में वास्तविक और पूर्ण एकीकरण अस्तित्व में आ गया था कि दाण्डिक पक्ष के सभी मजिस्ट्रेट पद (जिला मजिस्ट्रेट और उपखण्ड मजिस्ट्रेट) सिविल पक्ष के क्रमशः अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों से एकीकृत हो गए थे। इस प्रकार उच्च न्यायालय के इस निमित्त निष्कर्ष को स्वीकार करना संभव नहीं है। (पैरा 8 और 9)

यह तथ्य कि तीन पृथक्-पृथक् नियम संवर्ग अर्थात्, (1) केरल स्टेट हायर ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1961 (जो केवल जिला एवं सेशन न्यायाधीशों के सम्बन्ध में थे), (2) केरल सर्वाॅडिनेट मैजिस्टीरियल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1962 और (3) तारीख 5 अक्तूबर, 1966 वाले केरल स्टेट ज्युडिशियल सर्विस रूल्स (स्पेशल रूल्स) प्रवृत्त रहे हैं, यह दर्शित करता है कि न्यायिक मजिस्ट्रेट पदों का न्यायिक सिविल पदों से एकीकरण नहीं हुआ था। यदि ऐसा है तो एकीकृत सेवा में से कुछ पदों को क्रमशः प्रदर्श पी-1 और पी-2 के अधीन प्रोन्नति के पृथक् साधन के लिए अलग निकालने का प्रश्न नहीं उठता, जैसी कि पिटीशनर द्वारा दलील दी गई है, और प्रदर्श पी-1 और पी-2 में विद्यमान विभाजन की स्कीम अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण करने वाली नहीं मानी जा सकती। प्रदर्श पी-1 और पी-2 के अनुसार विभाजन की स्कीम को चालू किए जाने से पूर्व केरल राज्य में न्यायिक सेवा का इस अर्थ में पूर्ण एकीकरण अस्तित्व में नहीं आया था कि दाण्डिक पक्ष के सभी मजिस्ट्रेट

पद (सभी जिला मजिस्ट्रेट और उपखण्ड मजिस्ट्रेट) सिविल पक्ष के अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों से एकीकृत हो गए थे, और इसलिए ऐसी पूर्ण एकीकृत न्यायिक सेवा अस्तित्व में न आने के कारण राज्य सरकार को इस बात की छूट थी कि वह सेवा को दो खण्डों में, अर्थात्, सिविल खण्ड और दाण्डिक खण्ड में, क्रमश: प्रदर्श पी-1 और पी-2 के अधीन की गई रीति से विभाजित करे और उसमें विनिर्दिष्ट विशेष प्रकार के विकल्प का उपबन्ध करे और अनुच्छेद 14 और 16 का कोई अतिक्रमण नहीं हुआ है। (पैरा 10)

राज्य सरकार को किसी विशेष सेवा में इतने काडर गठित करने की छूट है जितने वह प्रशासनिक सुविधा और समीचीनता के अनुसार गठित करना चाहे और इसलिए यदि फरवरी, 1973 में केरल राज्य ने न्यायिक सेवा को दो खण्डों, सिविल और दाण्डिक, में विभाजित करने का विचार किया और प्रत्येक खण्ड के पदधारियों की भर्ती और सेवा की शर्तों को शासित करने वाले पृथक्-पृथक् कानूनी नियमों को बनाने का भी विचार किया तो उसके द्वारा इस निमित्त किए गए किसी भी विनिश्चय में दोष नहीं ढूंढ़ा जा सकता। (पैरा 7)

जहां दो अर्थान्वियन सम्भव हों वहां उस अर्थान्वियन से बचा जाना चाहिए जिससे असांविधानिकता होती है और दूसरे को, जो उपबन्ध को सांविधानिक बना देता है, अपनाया जाना चाहिए चाहे इसके लिए भाषा पर कुछ दबाव ही आवश्यक क्यों न हो। (पैरा 11)

(न्यायाधिपति पी०एन० सिंघल के अनुसार)—संविधान या किसी अन्य विधि में ऐसी कोई बात नहीं है जो राज्य को उसकी आवश्यकतानुसार एक या अधिक राज्य सेवाओं का सृजन करने से या किसी विद्यमान सेवा को दो या अधिक सेवाओं में विभाजित करने से रोकती हो। वास्तव में संविधान के अनुच्छेद 309 द्वारा राज्य के मामलों के सम्बन्ध में लोक सेवाओं और पदों पर भर्ती और नियुक्त किए गए व्यक्तियों की सेवा की शर्तों को नियमित करने के लिए अधिनियम और नियम बनाना अनुज्ञात है। (पैरा 26)

आक्षेपित आदेशों (प्रदर्श पी-1 और पी-2) द्वारा उन सिविल न्यायिक अधिकारियों के बीच जो 'मूल रूप से मजिस्ट्रेट' थे और उनके

बीच जो बाद में किन्तु न्यायपालिका के तथाकथित दाण्डिक खण्ड के गठन से पूर्व मजिस्ट्रेट बने थे वर्गीकरण अनुज्ञेय वर्गीकरण नहीं है और इसके विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि यह केरल दाण्डिक न्यायिक सेवा के पदों को सम्भालने के लिए कुशल सेवा का उपबन्ध करने के उद्देश्यों से सम्बन्धित है या इसकी पूर्ति करता है। (पैरा 33)

जब एक बार यह अभिनिर्धारित कर दिया जाता है कि एकीकृत सेवा का सिविल और दाण्डिक न्यायिक सेवा में विभाजन विधिमान्य था और राज्य में दाण्डिक न्यायिक सेवा के गठन के लिए पहले से मजिस्ट्रेट के कार्य के अनुभव की अपेक्षा विहित करना न्यायोचित था तब इसे केवल इस आधार पर संविधान के अनुच्छेद 14 या 16 के अधीन चुनौती देना अनुज्ञेय नहीं होगा कि इसमें न्यायपालिका के मजिस्ट्रेट-खण्ड के लिए पृथक् प्रोन्नति के अवसर निकाले गए थे। जब पृथक् दाण्डिक न्यायिक सेवा 1973 वाले दो नियम-संवर्गों द्वारा विधिमान्य रूप से गठित की गई थी और उन नियमों में इसके गठन, अर्हताओं, भर्ती और उच्चतर, पदों पर प्रोन्नति के ढंग का उपबन्ध था तो यह युक्तियुक्त ही था कि सेवा के सदस्यों की प्रोन्नति उनके द्वारा शासित हो। (पैरा 35)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1973]	ए०आई०आर० 1973 एस० सी० 1146=[1973]1 उम० नि०प० 355 : **मैसूर राज्य बनाम एम० एच० कृष्णमूर्ति और अन्य** (The State of Mysore *Vs.* M.H. Krishnamurthy and Others);	5,10
[1970]	ए०आई०आर० 1970 केरल 165 : **पी० एस० मेनन बनाम केरल राज्य और अन्य** (P.S. Menon *Vs.* The State of Kerala and Others);	7,10
[1962]	(1962) सप्लीमेण्ट 2 एस०सी०आर० 257 : **भैयालाल शुक्ल बनाम मध्य प्रदेश राज्य** (Bhaiyalal Shukla *Vs.* The State of Madhya Pradesh);	32

[1961] (1961) 2 एस० सी० आर० 120 :
मखन लाल मल्होत्रा और अन्य बनाम भारत संघ
(Makhan Lal Malhotra and Others *Vs.* The Union of India); 32

[1959] (1959) एस० सी० आर० 279 :
श्री रामकृष्ण डालमिया बनाम श्री न्यायाधिपति एस० आर० तन्दोलकर और अन्य
(Shri Ram Krisha Dalmina *Vs.* Shri Justice S.R. Tendolkar and Others). 32

(सिविल अपीली अधिकारिता : 1974 की सिविल अपील संख्या 2074.

1973 के आरम्भिक पिटीशन संख्या 3639 में केरल उच्च न्यायालय के तारीख 8 फरवरी, 1974 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपील।

और

1974 की सिविल अपील संख्या 2048

1973 के आरम्भिक पिटीशन संख्या 3639 में केरल उच्च न्यायालय के तारीख 8 फरवरी, 1974 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपील।

अपीलार्थी की ओर से (1974 की सिविल अपील संख्या 2047 में)	सर्वश्री एल० एन० सिन्हा और के० एम० के० नायर
अपीलार्थी की ओर से (1974 की सिविल अपील संख्या 2048 में)	सर्वश्री टी० एस० कृष्णमूर्ति अय्यर, एन० सुधाकरन् और श्रीमती वी० डी० खन्ना
प्रत्यर्थियों की ओर से (दोनों अपीलों में)	सर्वश्री टी० सी० राघवन और पी० केशव पिल्लै

अभिलेख-अधिवक्ता

अपीलार्थी की ओर से (1974 की सिविल अपील संख्या 2047 में)	श्री के० एम० के० नायर
अपीलार्थी की ओर से (1974 की सिविल अपील संख्या 2048 में)	श्री एन० सुधाकरन्
प्रत्यर्थियों की ओर से (दोनों अपीलों में)	श्री पी० के० पिल्लै

मुख्य न्यायाधिपति एम० एच० बेग, न्यायाधिपति पी०एन० भगवती, वी० आर० कृष्ण अय्यर, एस० मुर्तज़ा फ़ज़ल अली, जसवन्त सिंह और न्यायाधिपति वी०डी० तुलज़ापुरकर के मतानुसार।

न्यायाधिपति तुलज़ापुरकर—

विशेष इजाजत लेकर की गई ये दो अपीलें, जिनमें से एक केरल राज्य द्वारा (जो मूल प्रत्यर्थी सं० 1 है) और दूसरी सर्वश्री के० सुकुमारन् नायर और ओ०जे० एंटनो द्वारा (जो मूल प्रत्यर्थी सं० 3 और 4 तथा दाण्डिक पक्ष के न्यायिक अधिकारी हैं) की गई है केरल उच्च न्यायालय के 1973 वाले मूल पिटीशन (रिट पिटीशन) सं० 3639 में 8 फरवरी, 1974 को किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई हैं। उच्च न्यायालय ने उस निर्णय और आदेश के द्वारा तारीख 12 फरवरी, 1973 और 18 सितम्बर, 1973 वाले दो सरकारी आदेशों को (जो प्रदर्श पी-1 और पी-2 हैं) जिनके द्वारा केरल राज्य की न्यायिक सेवा को दो खण्डों, सिविल और दाण्डिक, में विभाजित किया गया था, और इस प्रकार बनाए गए न्यायिक सेवा के दो खण्डों के लिए विरचित कानूनी नियमों के दो संवर्गों, केरल सिविल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 और केरल क्रिमिनल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 को (जो राज्य के तारीख 26 नवम्बर, 1973 वाले अतिरिक्त प्रति-शपथ पत्र के उपाबन्ध 3 और 4 हैं) संविधान 1 के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण करने के आधार पर अभिखण्डित कर दिया था।

2. ऊपर उल्लिखित सरकारी आदेशों प्रदर्श पी-1 और पी-2 तथा नियमों के दो संवर्गों उपाबन्ध '3' और '4' की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती श्री एम० के० कृष्णन नायर (मूल पिटीशनर) की प्रेरणा पर, जो सिविल पक्ष में न्यायिक अधिकारी है, निम्नलिखित परिस्थितियों में दी गई थी : मूल पिटीशनर को केरल न्यायिक सेवा में 10 जून, 1958 को मुंसिफ के रूप में नियुक्त किया गया था और उसी पद पर उसकी 1 जुलाई 1961 को पुष्टि कर दी गई थी। मुंसिफ के रूप में सेवा करते हुए, उसे अलवई के उपखण्ड मजिस्ट्रेट के रूप में तैनात किया गया था और कुछ समय के लिए उसे जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक) एर्नाकुलम के पद का 16 जनवरी, 1963 से 31 जनवरी, 1963 तक पूर्ण अतिरिक्त भार सौंपा गया था। फिर उसे स्थानान्तरित करके वेकोम के मुंसिफ के रूप में तैनात किया गया था और 3 अक्टूबर, 1968 को उसे अधीनस्थ न्यायाधीश के रूप में प्रोन्नत किया गया था और बाद में उस पद पर उसकी पुष्टि कर दी गई थी। तात्विक समय जब केरल न्यायिक सेवा के दो खण्डों, सिविल खण्ड और दाण्डिक खण्ड, में विभाजन की स्कीम को प्रवर्तित किया जा रहा था, तब उसे स्थानान्तरित करके कोझीकोड में भूमि सुधार अपील प्राधिकरण के रूप में तैनात किया गया था। पिटीशनर का पक्षकथन यह था कि 12 फरवरी, 1973 से पूर्व अनेक सरकारी आदेशों, कानूनी निदेशों और संविधान के अनुच्छेद 234 और 237 के अधीन समय-समय पर जारी किए गए नियमों के परिणामस्वरूप दाण्डिक पक्ष में जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्डों मजिस्ट्रेटों के पदों को सिविल पद के क्रमशः अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों में मिला दिया गया था और पूर्ण रूप से एकीकृत केरल राज्य न्यायिक सेवा अस्तित्व में आ गई थी; किन्तु 12 फरवरी, 1973 को या उसके आस-पास केरल राज्य ने केरल उच्च न्यायालय से परामर्श करके राज्य में न्यायपालिका को विभाजित करने और क्रमशः सिविल और दाण्डिक न्यायपालिका के दो अलग-अलग खण्डों का गठन करने के लिए स्कीम बनाने का विनिश्चय किया। सिविल खण्ड में अधीनस्थ न्यायाधीश और मुंसिफ थे और दाण्डिक खण्ड में जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक), उपखण्ड मजिस्ट्रेट, अपर प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट, और अधीनस्थ मजिस्ट्रेट थे। इन दोनों सेवाओं को केरल सिविल न्यायिक सेवा और केरल दाण्डिक न्यायिक सेवा का नाम दिया जाना था और उक्त दो नई सेवाओं के लिए नियम

पृथक्-पृथक् रूप से जारी किए जाने थे। राज्य सरकार का यह विनिश्चय तारीख 12 फरवरी, 1973 वाले सरकारी आदेश एम०एस० 24/73/होम म है, जो प्रदर्श पी-1 है। न्यायपालिका को दो खण्डों में विभाजित करने की उपर्युक्त स्कीम के कार्यान्वयन के लिए प्रदर्श पी-1 पर विद्यमान सरकारी आदेश के पैरा 3 में कुछ निदेश थे, अर्थात् (क) कि सभी ऐसे सिविल न्यायिक अधिकारियों को जो मूल रूप से मजिस्ट्रेट थे, दाण्डिक पक्ष में जाने का विकल्प दिया जाएगा चाहे उनको केरल राज्य न्यायिक सेवा के पूर्ण सदस्यों के रूप में पुष्टि की गई हो या न की गई हो [पैरा 3(i)], (ख) कि जो दाण्डिक खण्ड का विकल्प देंगे और जिनके विकल्प सरकार द्वारा स्वीकार कर लिए जाएंगे उन्हें नई दाण्डिक न्यायिक सेवा में केवल उन पदों पर नियुक्त किया जाएगा जिन्हें वे मजिस्ट्रेट के रूप में अपने मूल रैंकों के आधार पर धारित करते न कि राज्य न्यायिक सेवा में उनकी वर्तमान स्थिति के आधार पर [पैरा 3(ii)], (ग) कि स्कीम के कार्यान्वयन के साथ-साथ उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के सभी पदों को नई दाण्डिक न्यायिक सेवा के सदस्यों के लिए उन्मोचित किया जाएगा और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के पदों पर वर्तमान पदधारियों को तदनुसार मुंसिफ के रूप में वापिस कर दिया जायगा [पैरा 3 (iii)], (घ) कि वे व्यक्ति जिन्हें स्कीम के कार्यान्वयन की तारीख को या उसके पूर्व जिला मजिस्ट्रेटों के रूप में नियुक्त किया गया है उस समय तक उस रूप में बने रहेंगे और सिविल न्यायपालिका में अपनी सदस्यता बनाए रखेंगे जब तक कि उन्हें उच्चतर न्यायिक सेवा में नियुक्त न कर दिया जाए या वे सेवा निवृत्त न हो जाएं [पैरा 3 (iv)], (ङ) कि यदि दाण्डिक खण्ड के लिए विकल्प देने वाले अधिकारियों की संख्या दाण्डिक न्यायिक सेवा में उन्हें लेने के लिए उपलभ्य पदों की संख्या से अधिक होगी तो ऐसे अधिकारियों में से फालतू अधिकारियों को यथासमय रिक्तियां होने पर दाण्डिक न्यायपालिका में उनकी दाण्डिक खण्ड में मूल ज्येष्ठता के अनुसार लेने के लिए सिविल न्यायपालिका में रखा जाएगा [पैरा 3 (v)] और (च) कि एक बार दिए गए विकल्प अन्तिम होंगे [पैरा 3(vi)]। अधिकारियों को अपना विकल्प देने के लिए आदेश की तारीख से दो महीने का समय दिया गया था। पिटीशनर के अनुसार उपर्युक्त स्कीम के कार्यान्वयन के रूप में 15 अधिकारियों ने दाण्डिक खण्ड में जाने का विकल्प दिया, किन्तु श्रीमती पी० कोमालवल्ली नामक अधिकारी का विकल्प शर्तरहित न होने के कारण स्वीकार नहीं

किया गया जबकि शेष सभी 14 अधिकारियों के विकल्प स्वीकार कर लिए गए। प्रदर्श पी-1 के पैरा 3(iii) के अनुसार उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के सभी पद दाण्डिक न्यायपालिका के सदस्यों के लिए उन्मोचित किए गए थे और पैरा 3(V) के अनुसार उन अधिकारियों की, जिनके विकल्प स्वीकार किए गए थे, संख्या 14 होने और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के केवल 9 पद उन्मोचित और तत्काल उपलभ्य होने के कारण चौदह अधिकारियों में से ज्येष्ठतम् पांच अधिकारियों को, यथासमय रिक्तियां होने पर दाण्डिक खण्ड में उनकी मूल ज्येष्ठता के अनुसार दाण्डिक न्यायपालिका में आमेलित करने के लिए उनके सिविल न्यायपालिका के पदों पर बनाए रखा गया। स्कीम का आंशिक कार्यान्वयन तारीख 18 सितम्बर, 1973 वाले सरकारी आदेश सं० एम०एस० 157/73/होम में अभिलिखित किया गया है, जो प्रदर्श पी-2 है। तारीख 12 फरवरी, 1973 वाले सरकारी आदेश में (प्रदर्श पी-1) में किए गए विनिश्चय के अनुसार दो नए नियम-संवर्ग केरल सिविल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 और केरल क्रिमिनल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 (जो राज्य के तारीख 26 नवम्बर 1973 वाले प्रति-शपथपत्र के क्रमशः उपाबन्ध '3' और '4' हैं), जो दोनों सेवाओं में से प्रत्येक के गठन, पदधारियों की भर्ती, अर्हता, परिवीक्षा, परीक्षा, नियुक्ति और स्थानान्तरण को शासित करते हैं, यथा समय बनाए गए और इन नियमों को 18 सितम्बर, 1973 से प्रवृत्त किया गया।

3. तारीख 28 मार्च, 1973 वाले एक पत्र द्वारा पिटीशनर से उपर्युक्त स्कीम के निबन्धनों के अनुसार अपना विकल्प भेजने की अपेक्षा की गई थी किन्तु चूंकि प्रदर्श पी-1 के पैरा 3(i) के अधीन वह विकल्प देने के लिए पात्र नहीं था, क्योंकि वह "मूल रूप से मजिस्ट्रेट" नहीं था, अतः उसने यह कहते हुए उत्तर भेजा कि उसके मामले में "विकल्प देने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।" किन्तु उसके अनुसार न्यायिक सेवा में उससे कनिष्ठ अनेक व्यक्तियों ने, जिन्हें मूल रूप से मजिस्ट्रेट-सेवा में भर्ती किया गया था, दाण्डिक खण्ड का विकल्प दिया जिससे उन्हें जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक) के रूप में नियुक्त किए जाने का फायदा हुआ और उसे इस अवसर से वंचित कर दिया गया, क्योंकि पृथक्करण की स्कीम द्वारा अनुध्यात विकल्प सिविल न्यायिक सेवा के केवल उन अधिकारियों तक सीमित या निर्बन्धित था जो "मूल रूप से मजिस्ट्रेट थे" और इसलिए ऐसे निर्बन्धित विकल्प युक्त पृथक्करण की स्कीम में

उसकी तरह के न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध, जिन्हें आरम्भ में सिविल पक्ष में भर्ती किया गया था, प्रतिकूल प्रभेद का दोष था। पिटीशनर ने प्रदर्श पी-1 में विद्यमान पृथक्करण की स्कीम की, प्रदर्श पी-2 में यथा अभिलिखित उसके आंशिक कार्यान्वयन की और स्कीम के अनुसरण में बनाए गए न्यायिक सेवा के दो खण्डों के लिए विरचित दो नियम संवर्गों की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती के रूप में दो प्रकार की दलीलें दी हैं। उसकी प्रथम दलील यह है कि पृथक्करण की उपर्युक्त स्कीम को चालू किए जाने से पूर्व, समय-समय पर संविधान के अनुच्छेद 234 और 237 के अधीन जारी किए गए अनेक सरकारी आदेशों, कानूनी निदेशों और नियमों के परिणामस्वरूप केरल राज्य में एक एकीकृत न्यायिक सेवा अस्तित्व में आ गई थी जिसमें जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के पदों को क्रमशः अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों में एकीकृत कर दिया गया था और, इसलिए, ऐसे एकीकरण के पश्चात केवल सभी मजिस्ट्रेट पदों को पृथक् करना और उन्हें पृथक् प्रोन्नति के अवसर सहित पृथक् प्रवर्ग के रूप में गठित करना और सिविल न्यायपालिका के अधिकारियों और पदों को भिन्न प्रोन्नति के अवसर ढूंढने के लिए छोड़ देना अनुचित, प्रभेदकारी और संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण था। दूसरी दलील यह है कि प्रदर्श पी-1 में विद्यमान पृथक्करण की स्कीम, केवल उन सिविल न्यायिक अधिकारियों के लिए, जो "मूल रूप से मजिस्ट्रेट थे", विकल्प समीति करने के कारण असांबिधानिक और प्रभेदकारी थी, क्योंकि उसकी तरह के व्यक्तियों को, जो 'मूल रूप से मजिस्ट्रेट" नहीं थे, किन्तु जिन्हें ट्रावनकोर-कोचीन मुंसिफ रिक्रूटमेंट रूल्स, 1953 के अधीन भर्ती किया गया था, उसी प्रकार का विकल्प देने के अवसर से वंचित किया गया था। यह दलील दी गई थी कि केवल उन व्यक्तियों तक जो "मूल रूप से मजिस्ट्रेट" थे विकल्प सीमित करने का कोई युक्तियुक्त औचित्य नहीं था और पृथक्करण की सम्पूर्ण स्कीम अयुक्तियुक्त वर्गीकरण करने वाली थी और आक्षेपित आदेशों और नियमों को, जिनके परिणामस्वरूप एकीकृत सेवा विच्छिन्न हो गई थी, अभिखण्डित किया जाना चाहिए।

4. इसके विपरीत केरल राज्य और मूल प्रत्यर्थी 3 और 4 की ओर से (जो दाण्डिक पक्ष वाले अधिकारी थे) इस बात पर विवाद किया गया था कि जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्डों मजिस्ट्रेटों के पदों का

सिविल पक्ष के अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों के साथ पूर्ण एकीकरण हुआ था या राज्य की कोई एकीकृत न्यायिक सेवा अस्तित्व में आ गई थी जैसी कि पिटीशनर ने दलील दी है। केरल राज्य ने अपने तारीख 17 नवम्बर, 1973 वाले प्रति-शपथपत्र में यह बताया है कि पूर्व कथित संवर्ग के पद संविधान के अनुच्छेद 236(ख) में यथापरिभाषित "न्यायिक सेवा" के अर्थ में सिविल न्यायिक पद नहीं थे और यद्यपि केरल सरकार द्वारा संविधान के अनुच्छेद 237 के अधीन जारी किए गए तारीख 28 अप्रैल, 1959 वाले सरकारी आदेश सं० एम०एस०/368/होम के अधीन संविधान के अनुच्छेद 234 और 235 के उपबन्ध 1 मई, 1955 से सभी वर्गों के न्यायिक मजिस्ट्रेटों को लागू कर दिए गए थे, जिसका अभिप्राय यह था कि सभी वर्गों के मजिस्ट्रेटों को उनकी भर्ती, नियुक्ति, प्रोन्नति आदि के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय के नियन्त्रणाधीन कर दिया गया था, तथापि नियमों में जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के पदों के लिए अर्हताएं और नियुक्ति का ढंग निश्चित करने के लिए नियमों में कोई विनिर्दिष्ट उपबन्ध नहीं किया गया था और इसके अतिरिक्त ऐसा कोई उपबन्ध नहीं था जिसमें यह अपेक्षा की गई हो कि केवल अधीनस्थ न्यायाधीश को ही जिला मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त किया जाएगा और केरल स्टेट ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, (स्पेशल रूल्स), 1966 के नियम 5, सपठित नियम 20, के अधीन, प्रथा के रूप में, अधीनस्थ न्यायाधीशों को जिला मजिस्ट्रेटों के रूप में और मुंसिफों को उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के रूप में नियुक्त किया जाता था, किन्तु ऐसी नियुक्तियों से वे न्यायिक सेवा में अधीनस्थ न्यायाधीशों या मुंसिफों के रूप में अपनी हैसियत से वंचित नहीं होते थे। दूसरे शब्दों में, यह दलील दी गई थी कि पूर्ण रूप से एकीकृत न्यायिक सेवा के अभाव में प्रदर्श पी-1 में विद्यमान स्कीम को प्रवर्तित करने के परिणामस्वरूप सेवा के विच्छिन्न होने का कोई प्रश्न नहीं था। आगे यह दलील दी गई थी कि केरल राज्य न्यायिक सेवा को, दो खण्डों, प्रदर्श पी-1 के अनुसार सिविल खण्ड और दाण्डिक खण्ड, में विभाजित करने का विनिश्चय केरल उच्च न्यायालय के परामर्श से, उच्च न्यायालय के इस सुविचारित मत का सम्मान करते हुए किया गया था कि अनुभव से यह दर्शित होता था कि अधीनस्थ न्यायाधीशों को जिला मजिस्ट्रेटों के रूप में और मुंसिफों को उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के रूप में नियुक्त करने की पिछली प्रथा का पुनरीक्षण करने की आवश्यकता

थी। इसके लिए पहला आधार यह था कि अधीनस्थ मजिस्ट्रेटों और अपर प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेटों के रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति अधिक अच्छे उपखण्ड मजिस्ट्रेटों और जिला मजिस्ट्रेट रहेंगे, और दूसरा आधार यह था कि उस प्रथा से मजिस्ट्रेट-सेवा के सदस्यों में उचित आक्रोश और असन्तोष होना अनिवार्य था, क्योंकि उसका अभिप्राय यह था कि केवल कुछ उप खण्ड मजिस्ट्रेटों और अपर प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रटों को छोड़कर सभी उपखण्ड मजिस्ट्रेट और अपर प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट के रूप में सेवा निवृत्त हो जाएंगे और उन्हें प्रोन्नति का कोई अवसर नहीं मिलेगा और विधि विशेषज्ञों से सीधी भर्ती, प्रोन्नति के अवसर नगण्य होने के कारण, कठिन और निम्न स्तर की होगी। इस प्रकार स्कीम द्वारा यथा अनुध्यात दो खण्डों में वर्गीकरण बोधगम्य अन्तर पर आधारित युक्तियुक्त वर्गीकरण था और उसका प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य, अर्थात्, दाण्डिक पक्ष में श्रेष्ठतर न्याय प्रशासन की प्राप्ति से युक्तियुक्त सम्बन्ध था। यह भी दलील दी गई थी कि प्रदर्श पी-1 के पैरा 3(i) में विनिर्दिष्ट विकल्प सेवा के विद्यमान पदधारियों के लिए प्रवर्तित था और भविष्य के लिए नहीं था, जैसा कि इस तथ्य से स्पष्ट था कि कानूनी नियमों के दो संवर्गों (उपाबन्ध 3 और 4) में किसी प्रकार के विकल्प का उपबन्ध नहीं था और नहीं है और इसलिए जो भी हो ये नियम किसी भी प्रकार के दोष से रहित हैं।

5. कार्यपालिका से न्यायपालिका को पृथक् करने से सम्बन्धित समय-समय पर जारी किए गए कानूनी नियमों और सरकारी आदेशों के इतिहास का उल्लेख करने के पश्चात् और मुख्य रूप से तारीख 24 सितम्बर, 1959 वाले सरकारी आदेश सं० एम०एस० 851/पी०यू०बी० (इंटेग्रेशन), तारीख 24 सितम्बर, 1959 वाले सरकारी आदेश सं० एम०एस० 850 में विद्यमान अनुच्छेद 234 के अधीन बनाए गए नियमों, अनुच्छेद 234, सपठित अनुच्छेद 309, के अधीन बनाए गए ट्रावनकोर-कोचीन दाण्डिक न्यायिक अधिकारियों के आमेलन के लिए तारीख 2 फरवरी, 1966 वाले तदर्थ नियमों और तारीख 5 अक्तूबर, 1966 वाले केरल स्टेट ज्युडिशियल सर्विस रूल्स (स्पेशल रूल्स) का अवलम्ब लेते हुए उच्च न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के पदों का अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों से एकीकरण हुआ था और मजिस्ट्रटों के पद न्यायिक सेवा में मिला दिए गए

थे और इसलिए पृथक् प्रोन्नति के अवसरों के लिए एकीकृत सेवा में से कुछ पदों को अलग कर देना विभेदकारी होगा। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि प्रदर्श पी-1 और पी-2 पर विद्यमान सरकारी आदेश जिनके द्वारा राज्य की न्यायपालिका में दो पृथक् खण्ड, अर्थात्, सिविल और दाण्डिक खण्ड, गठित किए गए थे, दो आधारों पर अविधिमान्य थे--(क) न्यायपालिका का दो खण्डों में पृथक्ककरण और मजिस्ट्रेटों के खण्ड में, जिन्हें सिविल न्यायिक पदों में एकीकृत और आमेलित कर दिया गया था, पृथक् प्रोन्नति के अवसर निकालना विभेदकारी और अयुक्तियुक्त था और (ख) प्रदर्श पी-1 और पी-2, जिनमें दाण्डिक न्यायपालिका में जाने के विकल्प का प्रयोग केवल मजिस्ट्रेट वर्ग के अधिकारियों तक निर्बन्धित किया गया था, प्रभेदकारी थे और संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के प्रतिकूल थे। यह निष्कर्ष निकालने के लिए उच्च न्यायालय ने **मैसूर राज्य बनाम कृष्णमूर्ति और अन्य**[1] में इस न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चय का प्रबल अवलम्ब लिया था। तदनुसार उच्च न्यायालय ने अपने तारीख 8 फरवरी, 1974 वाले निर्णय और आदेश के द्वारा प्रदर्श पी-1 और पी-2 पर विद्यमान सरकारी आदेशों और उपाबन्ध 3 और 4 पर विद्यमान कानूनी नियमों के दो संवर्गों को, जो उक्त दो खण्डों में भर्ती और उनकी सेवा की शर्तों को शासित करते हैं, अभिखण्डित और अपास्त कर दिया। उच्च न्यायालय के इसी निर्णय और आदेश को केरल राज्य ने 1974 की सिविल अपील सं० 2047 में और मूल प्रत्यर्थी सं० 3 और 4 ने (जो दाण्डिक पक्ष के न्यायिक अधिकारी हैं) 1974 की सिविल अपील सं० 2048 में चुनौती दी है।

6. अपीलों के समर्थन में, अपीलार्थियों के काउन्सेल ने दलील दी कि राज्य सरकार की अपनी न्यायिक सेवाओं को दो खण्डों, अर्थात् सिविल और दाण्डिक खण्ड, में विभाजित करने और प्रत्येक खण्ड के पदधारियों की भर्ती और सेवा की शर्तों को शासित करने वाले पृथक् पृथक् कानूनी नियम बनाने की शक्ति पर विवाद नहीं किया जा सकता और इसलिए दो नियम संवर्गों को, जो उपाबन्ध 3 और 4 हैं, विशेष रूप से जबकि उनमें से किसी में भी किसी न्यायिक अधिकारी द्वारा विकल्प दिए जाने का उपबन्ध नहीं है, संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अधीन प्रश्नगत नहीं किया जा सकता। जहां तक केरल न्यायिक सेवा को दो खण्डों,

1. ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 1146 = [1973] 1 उम० नि० प० 355.

सिविल और दाण्डिक, में विभाजित करने वाली स्कीम का सम्बन्ध है, जिसमें 'मूल रूप से मजिस्ट्रेट के पदों वाले' अधिकारियों को विकल्प दिया गया है, जैसा कि प्रदर्श पी-1 और पी-2 में अनुकल्पित है, हमारे समक्ष दो प्रकार की दलीलें दी गई हैं। प्रथम दलील, विशेष रूप से 1974 की सिविल अपील सं० 2048 में अपीलार्थियों के काउन्सेलों द्वारा, जिनमें से केरल राज्य का काउन्सेल इस सम्बन्ध में कुछ संकोच कर रहा था, यह दी गई थी कि केरल राज्य में दाण्डिक पक्ष के न्यायिक अधिकारियों के पदों का सिविल पक्ष के न्यायिक अधिकारियों के पदों के साथ किसी भी समय एकीकरण नहीं हुआ था और वह सामग्री जिसका मूल पिटीशनर और उच्च न्यायालय ने अवलम्ब लिया है, यह दर्शित नहीं करती कि केरल राज्य में 12 फरवरी, 1973 से पूर्व दोनों पक्षों के अधिकारियों के बीच ऐसा एकीकरण हुआ था या पूर्ण रूप से एकीकृत न्यायिक सेवा अस्तित्व में आ गई थी, कि सिविल पक्ष और दाण्डिक पक्ष के न्यायिक अधिकारी सदैव सेवा के पृथक्-पृथक् काडर गठित करते थे और इसलिए दोनों के बीच कोई एकीकरण न होने के कारण संविधान के अनुच्छेद 14 या 16 अनुच्छेद में से किसी का उल्लंघन करके किसी एक वर्ग के अधिकारियों के साथ दूसरे पक्ष के अधिकारियों की अपेक्षा विरोधी या प्रतिकूल व्यवहार करने का कोई परिवाद नहीं हो सकता। दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद 14 या अनुच्छद 16 मामले के तथ्यों को बिलकुल भी लागू नहीं होता, क्योंकि इन दो खण्डों के अधिकारी समरूप स्थिति में या समान परिस्थितियों में कभी नहीं थे और अब भी नहीं हैं। दूसरी दलील यह दी गई थी कि यदि यह मान भी लिया जाए कि केरल राज्य में 12 फरवरी, 1973 से पूर्व न्यायिक सेवा का पूर्ण एकीकरण अस्तित्व में आ गया था तो भी ऐसी एकीकृत सेवा के न्यायिक अधिकारियों का दो प्रवर्गों या खण्डों, अर्थात् सिविल खण्ड और दाण्डिक खण्ड, में विभाजन बोधगम्य अन्तर पर आधारित था और उसका विभाजन की स्कीम द्वारा तथा उस स्कीम के अनुसरण में बनाए गए नियमों द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से युक्तियुक्त सम्बन्ध था। यह बताया गया था कि न्यायिक सेवा को दो खण्डों में विभाजित करने और उन अधिकारियों तक, जो मूल रूप से मजिस्ट्रेट थे, विकल्प सीमित करने के औचित्य का आधार उच्च न्यायालय का यह सुविचारित मत था, जिसे राज्य सरकार ने स्वीकार कर लिया था, कि वे व्यक्ति, जिन्होंने अधीनस्थ मजिस्ट्रेटों और अपर

प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेटों के रूप में कार्य कर लिया है, श्रेष्ठतर उपखण्ड मजिस्ट्रेट और जिला मजिस्ट्रेट बनेंगे और संतुष्ट और कुशल दाण्डिक न्यायपालिका, जिसे प्रोन्नति के आकर्षक अवसर प्राप्त हों, वांछनीय थी और इसलिए प्रदर्श पी-1 और पी-2 के अधीन विभाजन या वर्गीकरण युक्तियुक्त था और अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 16 के अधीन उस पर आक्षेप नहीं किया जा सकता था। जहां तक प्रदर्श पी-1 में विद्यमान विकल्प का सम्बन्ध है, केरल राज्य के काउन्सेल श्री लाल नारायण सिन्हा ने एक अन्य वैकल्पिक दलील यह दी कि यदि "मूल रूप से मजिस्ट्रेट" शब्दों का, जो प्रदर्श पी-1 के पैरा 3(i) में आते हैं, अर्थान्वयन यह किया जाए कि विकल्प का आशय उन सभी अधिकारियों को फायदा पहुंचाना था जो मजिस्ट्रेट थे और जिन्होंने किसी समय, किन्तु स्कीम को प्रवर्तित किए जाने से पूर्व ('मूल रूप से' अभिव्यक्ति का अर्थ स्कीम से पहले या पूर्व है) मजिस्ट्रेटों के रूप में कार्य किया था तो वह विरोधी व्यवहार नहीं रहेगा जिसका सुझाव दिया गया है। इसके विपरीत, मूल पिटीशनर की ओर से, जो दोनों अपीलों में प्रत्यर्थी संख्या 1 है, उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए मत का समर्थन किया गया है और उस पर हमारी स्वीकृति के लिए जोर दिया है।

7. इस बात पर विवाद नहीं किया गया था और नहीं किया जा सकता है कि राज्य सरकार को किसी विशेष सेवा में इतने काडर गठित करने की छूट है जितने वह प्रशासनिक सुविधा और समीचीनता के अनुसार गठित करना चाहे और, इसलिए, यदि फरवरी 1973 में केरल राज्य ने न्यायिक सेवा को दो खण्डों, सिविल और दाण्डिक, में विभाजित करने का विचार किया और प्रत्येक खण्ड के पदधारियों की भर्ती और सेवा की शर्तों को शासित करने वाले पृथक्-पृथक् कानूनी नियमों को बनाने का भी विचार किया तो उसके द्वारा इस निमित्त किए गए किसी भी विनिश्चय में दोष नहीं ढूंढा जा सकता। किन्तु मूल पिटीशनर के परिवाद की व्यथा यह है कि उस एकीकृत न्यायिक सेवा को, जो 12 फरवरी, 1973 से पूर्व संविधान के अनुच्छेद 234 और 236 के अधीन समय-समय पर जारी किए गए सरकारी आदेशों, कानूनी निदेशों और नियमों के परिणामस्वरूप केरल राज्य में अस्तित्व में आ गई थी, राज्य द्वारा तारीख 12 फरवरी, 1973 और 18 सितम्बर, 1973 वाले दो सरकारी आदेशों के अधीन, जो क्रमशः प्रदर्श पी-1 और पी-2 हैं, केवल सभी

मजिस्ट्रेट-पदों को पृथक् प्रोन्नति के अवसर के लिए एक प्रवर्ग में रखकर और सिविल न्यायपालिका के अधिकारियों और पदों को प्रोन्नति के भिन्न अवसर निकालने के लिए छोड़कर, विभाजित किया गया है और वह विभाजन या वर्गीकरण अयुक्तियुक्त, प्रभेदकारी और संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण करने वाला है। पिटीशनरों की दलीलों का मुख्य जोर इस बात पर है कि कुछ पदों (मजिस्ट्रेट-पदों) को ऐसी एकीकृत सेवा में से प्रोन्नति के पृथक् अवसर के लिए अलग कर लेना प्रभेदकारी है। न्यायिक सेवा के सिविल पक्ष के अधिकारियों और पदों के साथ विरोधी और प्रतिकूल व्यवहार की दलील इस तथ्य पर आधारित है कि दाण्डिक खण्ड में जाने का विकल्प, जो प्रदर्श पी-1 के पैरा 3 (i) में है, केवल उन अधिकारियों तक सीमित या निर्बन्धित है, जो "मूल रूप से मजिस्ट्रेट" थे। प्रदर्श पी-1 और पी-2 के सरकारी आदेशों के विरुद्ध आलोचनाएं करते समय पिटीशनर ने यह मूल पूर्वानुमान किया है कि 12 फरवरी, 1973 से पूर्व केरल राज्य में एक पूर्ण रूप से एकीकृत न्यायिक सेवा अस्तित्व में आ गई थी जिसमें दाण्डिक पक्ष के जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के पदों को सिविल पक्ष के क्रमशः अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के साथ एकीकृत कर दिया गया था। इस पूर्वानुमान पर हमारे समक्ष अपीलार्थियों ने प्रबल रूप से विवाद किया है। यह स्पष्ट है कि यदि केरल राज्य में न्यायिक सेवा का उस रीति से पूर्ण एकीकरण अस्तित्व में न आया हो जिसका पिटीशनर ने सुझाव दिया है तो संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अधीन विरोधी प्रभेद की संकल्पना का सहारा लेने का प्रश्न ही नहीं उठेगा, क्योंकि यह सुस्थिर है कि समान व्यवहार या अवसर से वंचित करने का प्रश्न केवल एक ही वर्ग के सदस्यों के बीच उठ सकता है। दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद 14 या 16 केवल उसी दशा में लागू होगा जबकि वे व्यक्ति, जिनके साथ अनुकूल व्यवहार किया गया है, उसी वर्ग के अंग हों जिसके प्रतिकूल व्यवहार प्राप्त करने वाले व्यक्ति हैं, इसलिए, हमारे विचार से इन अपीलों में अवधारण के लिए उत्पन्न मुख्य प्रश्न यह है कि प्रदश पी-1 और पी-2 में विद्यमान विभाजन की स्कीम को चालू किए जाने से पूर्व संविधान के अनुच्छेद 234 और 237 के अधीन समय-समय पर जारी किए गए अनेक सरकारी आदेशों, कानूनी निदेशों और नियमों के परिणामस्वरूप केरल राज्य में न्यायिक सेवा का पूर्ण एकीकरण अस्तित्व में आ गया था

1978(2) eILR(PAT) SC 247

या नहीं ? दूसरे शब्दों में, क्या जिला मजिस्ट्रेट और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के पदों का अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों से एकीकरण हो गया था, जैसी कि मूल पिटीशनर ने दलील दी है? उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष कि केरल में जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के पदों को अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों से एकीकृत कर दिया गया था, निम्नलिखित सामग्री पर आधारित है : (क) तारीख 24 सितम्बर, 1959 वाले सरकारी आदेश सं० एम० एस० 851/पी० यू० सी० (इंटेग्रेशन) में विद्यमान अनुदेश, (ख) तारीख 24 सितम्बर, 1959 वाले सरकारी आदेश सं० एम० एस० 850 में विद्यमान अनुच्छेद 234 के अधीन बनाए गए नियम, (ग) अनुच्छेद 234, सपत्ति अनुच्छेद 309 के अधीन बनाए गए तारीख 2 फरवरी, 1966 वाले ट्रावनकोर-कोचीन दाण्डिक न्यायिक अधिकारियों के समामेलन के लिए तदर्थ नियम और और (घ) तारीख 5 अक्तूबर, 1966 वाले केरल स्टेट ज्युडिशियल सर्विस रुल्स (स्पेशल रुल्स) । उच्च न्यायालय के अनुसार उक्त सामग्री का संयुक्त प्रभाव यह था कि राज्य के लिए एक पूर्ण रूप से एकीकृत न्यायिक सेवा अस्तित्व में आ गई कही जा सकती थी । उच्च न्यायालय ने अपने उक्त निष्कर्ष के लिए **पी० एस० मेनन वाले मामले**[1] में उसी न्यायालय के एक पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय से समर्थन प्राप्त किया है जिसके विषय में यह कहा गया है कि पूर्ण न्यायपीठ ने 1959 और 1966 वाले नियमों का अभिप्राय जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के पदों को धारण करने वाले व्यक्तियों को सिविल न्यायिक सेवा में सम्मिलित करके उन्हें सिविल न्यायपालिका में आमेलित करना समझा था । प्रश्न यह है कि क्या उपर्युक्त सामग्री के आधार पर यह उपधारणा की जा सकती है कि केरल राज्य में इस अर्थ में न्यायिक सेवा का वास्तविक और पूर्ण एकीकरण अस्तित्व में आ गया था कि दाण्डिक पक्ष के जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के पद सिविल पक्ष के अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों से एकीकृत हो गए थे ।

8. आरम्भ में ही, यह कहा जा सकता है कि केरल राज्य का जिसमें भूतपूर्व मद्रास राज्य का मालाबार क्षेत्र और ट्रावनकोर-कोचीन राज्य समाविष्ट है, राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के अधीन 1 नवम्बर, 1956 से निर्माण किया गया था । नए केरल राज्य के इस प्रकार निर्माण

1. ए० आई० आर० 1970 केरल 165.

से पूर्व ही मद्रास राज्य में अप्रैल, 1952 से और ट्रावनकोर-कोचीन में मई, 1955 से संविधान के अनुच्छेद 50 में विद्यमान राज्य के नीति निदेशक तत्व का आदर करते हुए दाण्डिक न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने के लिए पहले ही कदम उठा लिए गए थे, किन्तु इन दो राज्यों में इस दिशा में उठाए गए अनेक कदमों से हमारा इस मामले में कोई सम्बन्ध नहीं है। यह भी उल्लेखनीय है कि नए केरल राज्य के निर्माण से पूर्व, जहां तक ट्रावनकोर-कोचीन क्षेत्र का सम्बन्ध है, ट्रावनकोर-कोचीन ज्युडिशियल सर्विस रिक्रूटमेंट ऑफ मुंसिफ्स रूल्स, 1953 प्रवर्तित थे जो संविधान के अनुच्छेद 234 और 238 के अधीन जारी किए गए थे। उन नियमों के नियम 2 में मुंसिफों की भर्ती के लिए अर्हताएं विनिर्दिष्ट थीं, जिनके अधीन मूल पिटीशनर को जून, 1958 में मुंसिफ के रूप में भर्ती किया गया था। उन नियमों का विस्तार से उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं हैं, किन्तु यह बता देना पर्याप्त होगा कि इन नियमों में मजिस्ट्रेटों का पूरक प्रवर्ग या भर्ती के लिए प्रवर्ग के रूप में उल्लेख नहीं था। नए केरल राज्य के निर्माण के परिणामस्वरूप भूतपूर्व मद्रास राज्य के मालाबार क्षेत्र और ट्रावनकार-कोचीन राज्य वाले न्यायिक कर्मचारिवृन्द और पदों के एकीकरण की दिशा में कार्यवाही की जानी अपेक्षित थी और पद की प्रकृति, शक्ति और उत्तरदायित्व पारस्परिक ज्येष्ठता, प्रोन्नति, आदि के संदर्भ में कृत्यात्मक समानता के आधार पर पदों की समानता के विषय में अनेक अनुदेश, आदेश और नियम समय-समय पर जारी किए जाने की आवश्यकता थी, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि इन्हें दो एकीकृत इकाइयों की सेवाओं के एकीकरण के समुचित दृष्टिकोण और संदर्भ में देखना होगा और उनका उस प्रकार के एकीकरण से, जिससे हमारा इस मामले में सम्बन्ध है, अर्थात्, दाण्डिक पक्ष के सभी मजिस्ट्रेट-पदों के सिविल पक्ष के पदों के साथ एकीकरण से बहुत नगण्य सम्बन्ध था। इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए, अब हम उस सामग्री पर विचार करेंगे जिसके आधार पर उच्च न्यायालय ने अपना यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि 12 फरवरी, 1973 से पूर्व केरल राज्य में मजिस्ट्रेट-पदों का सिविल पक्ष के पदों से पूर्ण एकीकरण हो गया था। हम आरम्भ में ही यह मत व्यक्त करना चाहेंगे कि पहली तीन मदों, अर्थात् उपर्युक्त (क), (ख) और (ग), वास्तव में दो एकीकृत इकाइयों, अर्थात, मालाबार शाखा और ट्रावनकोर-कोचीन शाखा से

लिए गए न्यायिक पदों और न्यायिक कर्मचारिवृन्द के एकीकरण के सम्बन्ध में केरल के राज्यपाल द्वारा जारी किए गए अनुदेशों, आदेशों या नियमों से सम्बन्धित हैं। तारीख 24 सितम्बर, 1959 वाला सरकारी आदेश सं० एम० एस० 851 [जो मद (क) है] सेवाओं के एकीकरण और भूतपूर्व ट्रावनकोर-कोचीन कर्मचारिवृन्द के पदों तथा मद्रास न्यायिक विभाग द्वारा आबंटित पदों के समीकरण के विषय में केरल के राज्यपाल द्वारा जारी किए गए पूर्ववर्ती आदेशों के पुनरीक्षण या उपान्तरण के विषय में था जैसा कि उसके शीर्षक से उपदर्शित होता है। उन पूर्ववर्ती आदेशों का उल्लेख करने के पश्चात् जिनके अधीन ट्रावनकोर-कोचीन शाखा के श्रेणी 1 और 2 के जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के पदों को उसी शाखा के क्रमशः अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीशों और अधीनस्थ न्यायाधीशों तथा मुंसिफों के पदों के वर्ग में रखा गया था और उन्हें 1-11-1956 को इन पदों को धारण करने वाले अधिकारियों के एकीकरण के प्रयोजन के लिए मद्रास शाखा के क्रमशः अधीनस्थ न्यायाधीशों और जिला मुंसिफों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के पदों के समान माना गया था और उच्च न्यायालय के इस मत का उल्लेख करने के पश्चात् कि ट्रावनकोर-कोचीन शाखा के कार्यपालिका मूल के जिला मजिस्ट्रेटों और श्रेणी 1 और 2 के उपखण्ड मजिस्ट्रेटों को सिविल न्यायिक अधिकारियों के समान रखना संमुचित नहीं होगा और इन दोनों को उस समय तक पृथक् रहना चाहिए जब तक कि मजिस्ट्रेट वर्ग के अधिकारियों को संविधान के अनुच्छेद 234 के अधीन विहित रीति से सिविल न्यायपालिका में न ले आया जाए। उस सरकारी आदेश में आगे कहा गया है कि सरकार ने इस विषय पर पुनर्विचार कर लिया है और उच्च न्यायालय की सलाह स्वीकार कर ली है। सरकारी आदेश में आगे यह निदेश भी दिया गया है कि ट्रावनकोर-कोचीन शाखा के जिला मजिस्ट्रेटों और श्रेणी 1 और 2 के उपखण्ड मजिस्ट्रेटों को 1-11-1956 को न्यायिक अधिकारियों के साथ एकीकृत नहीं किया जाएगा, और सिविल न्यायपालिका के पदों पर प्रोन्नत नहीं किया जाएगा और तदनुसार न्यायिक विभाग के पदों के समीकरण के सम्बन्ध में तारीख 27 मई, 1958 वाला पूर्ववर्ती सरकारी आदेश उस हद तक उपान्तरित हो जाएगा। ऐसा प्रतीत होता है कि पदों के पूर्ववर्ती समीकरण का उपान्तरण या पुनरीक्षण करते समय यह आवश्यक हो गया कि जिला मजिस्ट्रेटों के तीन पदों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के आठ पदों को सिविल

न्यायपालिका से बाहर पृथक् सेवा में गठित करके उनके सम्बन्ध में उपबन्ध किया जाए जिससे उन पदों के तत्कालीन पदधारी उन पदों पर बने रहें और इसलिए उक्त सरकारी आदेश के पैरा 2 में यह उपबन्ध किया गया कि ये जिला मजिस्ट्रेटों के तीन पद और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के आठ पद सिविल न्यायपालिका से बाहर पृथक् सेवा गठित करेंगे और समय आने पर अपनी समाप्ति पर समाप्त होते जाएंगे और वर्तमान पदधारी इन पदों को सेवा निवृत्त होने या प्रोन्नति होने पर या अन्यथा सिविल न्यायपालिका में आमेलित होने पर खाली करेंगे। इस सरकारी आदेश के पैरा 3 में यह उपबन्ध था कि ट्रावनकोर-कोचीन शाखा के ऐसे जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों को, जिन्हें उच्च न्यायालय द्वारा उपयुक्त पाया जाए, जब कभी अवसर उत्पन्न होंगे, सिविल न्यायपालिका में ले लिया जाएगा और उच्च न्यायालय को ऐसा करने में समर्थ बनाने के लिए संविधान के अनुच्छेद 234 के अधीन आवश्यक नियम पृथक् रूप से जारी किए जा रहे थे। उक्त सरकारी आदेश जारी करने के साथ-साथ एक और आदेश, जो तारीख 24 सितम्बर, 1959 वाला सरकारी आदेश सं० एम० एस० 850 था [जो उपर्युक्त मद (ख) है], एक अधिसूचना के रूप में जारी किया गया था जिसमें केरल के राज्यपाल द्वारा केरल लोक सेवा आयोग और केरल, उच्च न्यायालय के परामर्श से संविधान के अनुच्छेद 234 के अधीन बनाए गए नियम थे। ये नियम भी ट्रावनकोर-कोचीन शाखा के कार्यपालिका मूल के मजिस्ट्रेट-अधिकारियों को सिविल न्यायपालिका में लिए जाने के विषय में है जसा कि उनके शीर्षक से स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। नियम 1 में यह उपबन्ध था कि भूतपूर्व ट्रावनकोर-कोचीन राज्य के दो प्रवर्गों के वेतनभोगी मजिस्ट्रेट-अधिकारी, अर्थात्, जिला मजिस्ट्रेट और श्रेणी 1 और 2 के उपखण्ड मजिस्ट्रेट सिविल न्यायिक पदों के दो प्रवर्गों, अर्थात्, क्रमशः अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों पर नियुक्ति के पात्र होंगे परन्तु यह तब जब कि उक्त अधिकारियों के पास भारत के किसी विद्यालय की विधि की डिग्री (उपाधि) हो या वे बैरिस्टर-एट-लॉ हों। नियम 2 में परिवीक्षा की अवधि का उपबन्ध किया गया था जबकि नियम 3 के अनसार वे नियम तत्काल प्रवृत्त हो गए। तारीख 24 सितम्बर, 1959 वाले सरकारी आदेश सं० एम० एस० 851 के पैरा 2 और 3 का तथा तारीख 24 सितम्बर, 1959 वाले सरकारी आदेश सं० एम०

एस० 850 में उल्लिखित नियमों का अवलम्ब लेते हुए उच्च न्यायालय ने मत व्यक्त किया है कि सिविल न्यायपालिका में जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों को लाया जाना सरकारी आदेश संख्या एम० एस० 851 के पैरा 2 और 3 के अनुसार राज्य सरकार द्वारा अनुध्यात था और सरकारी आदेश संख्या एम० एस० 850 में दिए गए उक्त नियमों में इस स्थिति को मान्यता दी गई थी कि जिला मजिस्ट्रेट और उपखण्ड मजिस्ट्रेट सिविल न्यायपालिका में नियुक्ति के पात्र थे। हमारे मतानुसार सरकारी आदेश संख्या एम० एस० 851 के पैरा 2 और 3 और सरकारी आदेश संख्या एम० एस० 850 में दिए गए नियमों को यह उपधारणा करने वालों के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता कि दाण्डिक पक्ष के जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के सभी पदों का सिविल पक्ष के अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों के साथ सम्पूर्ण केरल राज्य में साधारण एकीकरण था। प्रथमतः, इन दोनों सरकारी आदेशों, सं० 851 और 850 को उस पृष्ठभूमि में जिनमें उन्हें जारी किया गया था, अर्थात्, एकीकृत होने वाली दोनों इकाइयों से लिए गए न्यायिक अधिकारियों की सेवाओं के एकीकरण और पदों के समीकरण के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। दूसरे, पूर्ववर्ती आदेशों के अधीन कुछ पदों के समीकरण को उपान्तरित या पुनरीक्षित किया गया था और पूर्ववर्ती समीकरण को इस प्रकार उपान्तरित या पुनरीक्षित करते समय मजिस्ट्रेटों के तीन पदों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के आठ पदों के लिए उपबन्ध किया जाना था, जिन्हें सिविल न्यायिक सेवा के बाहर पृथक् सेवा में इस दृष्टि से गठित किया गया था कि वे समय आने पर अपनी समाप्ति पर समाप्त हो जाएंगे और तब तक उनके तत्कालीन पदधारियों के अपने पदों पर बने रहने के लिए भी उपबन्ध किया जाना था और इन्हीं परिस्थितियों में यह उपबन्ध किया गया था कि वे पदधारी तब तक अपने पदों पर बने रहेंगे जब तक कि वे पद सेवा निवृत्ति या सिविल न्यायपालिका में प्रोन्नति या आमेलन द्वारा रिक्त न हो जाएं और यह उपबन्ध भी किया गया था कि ट्रावनकोर-कोचीन शाखा के जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों में से केवल ऐसे पदधारियों को, जिन्हें उच्च न्यायालय द्वारा उपयुक्त पाया जाए, जब कभी अवसर उत्पन्न हों, सिविल न्यायपालिका में ले लिया जाए और सरकारी आदेश संख्या एम० एस० 850 में दिए गए नियम उच्च न्यायालय को ऐसा करने में समर्थ बनाने के लिए ही बनाए गए थे।

दूसरे शब्दों में, ट्रावनकोर-कोचीन शाखा के जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों का सिविल न्यायपालिका में आमेलन जिला मजिस्ट्रेटों के तीन पदों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के आठ पदों के तत्कालीन पदधारियों में से (जिन्हें प्रत्यक्ष सेवा में गठित किया गया था) उनकी सीमित संख्या तक सीमित था, जिन्हें उच्च न्यायालय द्वारा उस प्रयोजन के लिए उपयुक्त पाया जाए। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि मजिस्ट्रेट-पक्ष के पदों का सिविल पक्ष के पदों के साथ सम्पूर्ण केरल राज्य में साधारण एकीकरण हुआ था जैसा कि पिटीशनर ने सुझाव दिया है। उच्च न्यायालय द्वारा अवलम्ब ली गई अगली मद (ग) है जो केरल लोक सेवा आयोग और केरल उच्च न्यायालय के परामर्श से केरल के राज्यपाल द्वारा बनाए गए तारीख 11 फरवरी, 1966 वाले तदर्थ नियम हैं, जो मद (क) और (ख) की सामग्री से, जिस पर हमने ऊपर विचार किया है, निकट से सम्बन्धित हैं। ये तदर्थ नियम "तारीख 24 सितम्बर, 1959 वाले सरकारी आदेश संख्या एम० एस० 850/851/59 (इंटीग्रेशन) डिपार्टमेंट और तारीख 24 जुलाई, 1961 वाले सरकार आदेश संख्या एम० एस० 594/61/पब्लिक (इंटीग्रेशन) के अधीन गठित पृथक् सेवा के ट्रावनकोर-कोचीन शाखा वाले दाण्डिक न्यायिक अधिकारियों के केरल राज्य न्यायिक सेवा से आमेलन के लिए" अभिव्यक्त रूप से बनाए गए थे। दूसरे शब्दों में, इन नियमों में, जिन्हें तदर्थ नियम कहा गया था, जो भी उपबन्ध किया गया था वह ट्रावनकोर-कोचीन शाखा के ऐसे दाण्डिक न्यायिक अधिकारियों के आमेलन के प्रयोजन के लिए ही था जिन्हें तारीख 24 सितम्बर, 1959 वाले सरकारी आदेश संख्या एम० एस० 850 और सरकारी आदेश संख्या एम० एस० 851 के अधीन सिविल न्यायपालिका के बाहर पृथक् सेवा में गठित किया गया था और जो उच्च न्यायालय द्वारा सिविल न्यायपालिका में लिए जाने के लिए उपयुक्त पाए गए थे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इन तदर्थ नियमों का प्रवर्तन सीमित था और इनसे यह उपधारणा नहीं हो सकती कि मजिस्ट्रेट-पक्ष के पदों का सिविल पक्ष के पदों से सम्पूर्ण केरल राज्य में सरकारी आदेश संख्या एम० एस० 850 और 851 द्वारा होने वाले एकीकरण से अधिक साधारण एकीकरण हुआ था।

9. आखिरी मद (घ), जिसका अवलम्ब लिया गया है, तारीख 5 अक्तूबर, 1966 वाले केरल स्टेट ज्युडिशियल सर्विस रूल्स (स्पेशल रूल्स) हैं। ये विशेष नियम केरल के राज्यपाल द्वारा संविधान के अनुच्छेद 234

और 235 तथा अनुच्छेद 309 के परन्तुक द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए केरल न्यायिक सेवा के सदस्यों की बाबत और इस विषय में सभी विद्यमान नियमों और विनियमों को अधिक्रान्त करते हुए बनाए गए हैं। नियम 5, 6 और 20 तात्विक नियम हैं जो विचाराधीन प्रश्न पर प्रभाव डालने वाले हैं। नियम 5 में, जो सेवा के गठन विषय में है, यह कहा गया है कि सेवा में दो प्रवर्गों अर्थात् प्रवर्ग 1: अधीनस्थ न्यायाधीश, जिसमें जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक) के रूप में नियुक्त किए गए अधीनस्थ न्यायाधीश सम्मिलित है और प्रवर्ग 2: मुंसिफ, जिसमें उपखण्ड मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त मुंसिफ सम्मिलित हैं, के अधिकारी होंगें। नियम 6 उपयुक्त दो प्रवर्गों में नियुक्ति के ढंग और प्रत्येक के लिए भर्ती के लिए स्रोत के विषय में है। जहां तक अधीनस्थ न्यायाधीश (प्रवर्ग) का सम्बन्ध है इसमें उपबन्ध है कि इस प्रवर्ग में नियुक्ति मुंसिफों से प्रोन्नति द्वारा की जाएगी जिसके लिए पात्र व्यक्तियों में से चयन सूची, गुण और योग्यता के आधार पर बनाई जाएगी और गुण और योग्यता लगभग समान होने पर ही ज्येष्ठता पर विचार किया जाएगा। जहां तक मुंसिफ (प्रवर्ग 2) का सम्बन्ध है, इसमें यह उपबन्ध है कि नियुक्ति या तो (1) विधि विशेषज्ञों से (दो तिहाई) सीधी भर्ती द्वारा या (2) तीन नामित प्रवर्गों में से, जिनमें अपर प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट और अधीनस्थ मजिस्ट्रेट सम्मिलित हैं, (एक तिहाई) अन्तरण द्वारा की जाएगी। नियम 20 में उपबन्ध है कि सेवा के सदस्यों की नियुक्ति और अन्तरण उच्च न्यायालय द्वारा किया जाएगा और नियम 20 के नीचे टिप्पण में कहा गया है कि प्रवर्ग 1 या प्रवर्ग 2 के किसी सदस्य की, यथास्थिति, जिला मजिस्ट्रेट या उपखण्ड मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्ति सरकार द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 10, 12 और 13 के अधीन की जाएगी। मूल पिटीशनर की ओर से इस पहलू का प्रबल अवलम्ब लिया गया था कि नियम 5 में, सेवा के दो प्रवर्गों का उल्लेख करते हुए, अधीनस्थ न्यायाधीश अभिव्यक्ति की परिभाषा इस रूप में दी गई है कि उसमें 'ऐसा अधीनस्थ न्यायाधीश सम्मिलित है जिसे जिला मजिस्ट्रेट के रूप में निक्युत किया गया है' और मुंसिफ पद की परिभाषा इस रूप में दी गई है कि उसमें 'ऐसा मुंसिफ सम्मिलित है, जिसे उपखण्ड मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त किया गया है' और इस पहलू का भी अवलम्ब लिया गया है कि नियम 6 के अधीन अपर प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेटों और अधीनस्थ मजिस्ट्रेटों को मुंसिफ के रूप में नियुक्त किया जा सकता था और पिटीशनर के अनुसार ये दो पहलू, जो नियम 5 और 6 से उत्पन्न होते हैं

स्पष्ट रूप से उपदर्शित करते हैं कि जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक) और उपखण्ड मजिस्ट्रेट के पदों का क्रमशः अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों से एकीकरण हुआ था। इस दलील को स्वीकार करना सम्भव नहीं है, क्योंकि हमारे मतानुसार जिस रीति से नियम 5 में सेवा के दो प्रवर्गों का वर्णन किया गया है और जिस रीति से नियम 6 में सेवा के प्रत्येक वर्ग के लिए भर्ती के विभिन्न स्रोतों का उपबन्ध किया हैं, उनसे यह दर्शित होता है कि न्यायपालिका के सिविल पक्ष के अधिकारियों के रूप में अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों की मूल हैसियत को सुभिन्न रूप से बनाए रखा गया है। यह तथ्य कि 'अधीनस्थ न्यायधीश' अभिव्यक्ति में जिला मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त अधीनस्थ न्यायाधीश को सम्मिलित बताया गया है और मुंसिफ अभिव्यक्ति में उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के रूप में नियुक्त मुंसिफों को सम्मिलित बताया गया है, स्पष्ट रूप से यह दर्शित करता है कि नियम बनाने वाले प्राधिकारी का आशय यह था कि इस बात के होते हुए भी कि इन अधिकारियों की नियुक्ति जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक) या उपखण्ड मजिस्ट्रेट के रूप में की जा सकती है, वे सिविल पक्ष के न्यायिक अधिकारियों के रूप में अपनी हैसियत को बनाए रखेंगे। जहां तक नियम 6 का सम्बन्ध है हम यह बता देना चाहेंगे कि यदि अपर प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट और उपखण्ड मजिस्ट्रेट अन्तरण द्वारा नियुक्ति करते समय मुंसिफों के पदों पर भर्ती के एकमात्र श्रोत होते तो पिटीशनर की ओर से दी गई दलील में कुछ बल होता। किन्तु ऐसा नहीं है, अन्तरण द्वारा भर्ती तीन श्रोतों, अर्थात्, (1) उच्च न्यायालय के सहायक रजिस्ट्रार, अधीक्षक और पुस्तकाध्यक्ष तथा जिला न्यायालय के शरिश्तेदार; (2) अपर प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट, अधीनस्थ मजिस्ट्रेट और सहायक लोक अभियोजन, ग्रेड 1, और (3) सरकारी सचिवालय के विधि विभाग के अधीक्षक और महाधिवक्ता के कार्यालय के प्रबन्धक से की जा सकती है। दूसरे शब्दों में, अपर प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट और अधीनस्थ मजिस्ट्रेट भर्ती का ऐसा एक श्रोत गठित करते हैं। नियम 20 के नीचे टिप्पण केवल एक समर्थकारी उपबन्ध है जो प्रवर्ग 1 के किसी सदस्य को जिला मजिस्ट्रेट के रूप में और प्रवर्ग 2 के किसी सदस्य को उपखण्ड मजिस्ट्रेट के रूप में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 10, 12 और 13 के अधीन नियुक्त करने के लिए समर्थ बनाता है। इसलिए हमारे मतानुसार तारीख 5 अक्तूबर, 1966 वाले केरल स्टेट

ज्युडिशियल सर्विस रूल्स (स्पेशल रूल्स) यह बिल्कुल भी दर्शित नहीं करते कि जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के पदों का क्रमशः अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों से एकीकरण हुआ था या हुआ है जैसा कि पिटीशनर द्वारा सुझाव दिया गया है। सरकारी आदेश संख्या एम० एस० 851 के अधीन 1959 वाले नियमों तथा 1966 वाले तदर्थ नियमों से यह दर्शित होता है कि उक्त नियमों के अधीन अधिक से अधिक तत्कालीन ग्यारह पदों के पदधारियों में से (तीन जिला मजिस्ट्रेटों और आठ उपखण्ड मजिस्ट्रेटों में से जिनसे सिविल न्यायपालिका के बाहर पृथक् सेवा गठित की गई थी) सीमित संख्या में उन लोगों का जिन्हें उच्च न्यायालय द्वारा उपयुक्त पाया गया था, सिविल न्यायपालिका में आंशिक आमेलन हुआ कहा जा सकता है, जबकि तारीख 5 अक्तूबर, 1966 वाले केरल स्टेट ज्युडिशियल सर्विस रूल्स के अधीन ज्येष्ठतम अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों को क्रमशः जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के रूप में नियुक्त करने की प्रथा चल पड़ी, यद्यपि ये न्यायिक अधिकारी सिविल न्यायपालिका में अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के रूप में अपने स्वरूप को बनाए रहे; किन्तु अनुभव से यह दर्शित हुआ कि इस प्रथा का दाण्डिक न्याय के प्रशासन को श्रेष्ठतर बनाने की दृष्टि से पुनरीक्षण करने की आवश्यकता थी और उच्च न्यायालय के इस सुविचारित मत का आदर करते हुए ही राज्य सरकार ने अन्ततोगत्वा न्यायिक सेवा के दो खण्डों, अर्थात्, सिविल खण्ड और दाण्डिक खण्ड को पृथक् करने और गठित करने का विनिश्चय किया और क्रमशः प्रदर्श पी-1 और पी-2 पर विद्यमान आदेश पारित किए और आवश्यक कानूनी नियम (उपाबंध 3 और 4) बनाए जो उक्त दो खण्डों में भर्ती और सेवा की शर्तों को शासित करते है। हमारे मतानुसार किसी भी सामग्री से जिसका उच्च न्यायालय ने अवलम्ब लिया है, यह उपधारण नहीं होता कि सम्पूर्ण केरल राज्य में न्यायिक सेवा का इस अर्थ में वास्तविक और पूर्व एकीकरण अस्तित्व में आ गया था कि दाण्डिक पक्ष में के सभी मजिस्ट्रेट पद (जिला मजिस्ट्रेट और उपखण्ड मजिस्ट्रेट) सिविल पक्ष के क्रमशः अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों से एकीकृत हो गए थे। इस प्रकार उच्च न्यायालय के इस निमित्त निष्कर्ष को स्वीकार करना सम्भव नहीं है।

10. यह उल्लेखनीय है कि अपने इस निष्कर्ष के समर्थन के लिए कि केरल राज्य में 12 फरवरी, 1973 से पूर्ण रूप से एकीकृत न्यायिक सेवा अस्तित्व में आ गई थी, उच्च न्यायालय ने यह बताया है कि **पी० एस० मेनन वाले मामले**[1] में उस न्यायालय के एक पूर्ण न्यायपीठ विनिश्चय में पूर्ण न्यायपीठ ने 1959 वाले नियमों (तारीख 24 सितम्बर, 1959 के सरकारी आदेश सं० एम० एस० 851 में विद्यमान नियमों) के सम्बन्ध में मत व्यक्त किया है कि उक्त नियमों को ऐसे कर्मचारिवृंद के सिविल न्यायपालिका में आमेलन के लिए बनाया गया था जो जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के पदों को धारण किए हुए थे। उच्च न्यायालय ने आगे बताया कि जब **पी० एस० मेनन वाला मामला**[1] अपील में उच्चतम न्यायालय में लाया गया तो इस न्यायालय ने भी 11 फरवरी, 1966 को बनाए गए तदर्थ नियमों का उल्लेख ऐसे नियमों के रूप में किया जो ट्रावनकोर-कोचीन शाखा के दाण्डिक पक्ष के उन न्यायिक अधिकारियों के आमेलन के लिए अभिप्रेत थे जिन्हें सिविल न्यायपालिका में पृथक् काडर में रखा गया था। सरकारी आदेश संख्या एम० एस० 851 में विद्यमान 1959 वाले नियमों के सम्बंध में पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय में केरल उच्च न्यायालय की और 1966 वाले तदर्थ नियमों के सम्बंध में इस न्यायालय की मताभिव्यक्तियां स्पष्ट रूप से सही हैं, किन्तु, जैसा कि पहले ही बता दिया गया है, इन दोनों नियमों का सीमित प्रवर्तन था जिसके परिणामस्वरूप उन ग्यारह पदों के पदधारियों का आंशिक रूप से सिविल न्यायपालिक में आमेलन हुआ था जिन्हें अलग काडर के रूप में रखा गया था और जो उच्च न्यायालय द्वारा उपयुक्त पाए गए थे; किन्तु इस तथ्य से यह उपधारणा करना असम्भव है कि सम्पूर्ण केरल राज्य में न्यायिक सेवा का पूर्ण एकीकरण इस अर्थ में अस्तित्व में आ गया था कि मजिस्ट्रेट पक्ष के सभी पद सिविल पक्ष के पदों से एकीकृत हो गए थे। इसके विपरीत यह तथ्य कि तीन पृथक्-पृथक् नियम संवग, अर्थात् (1) केरल स्टेट हायर ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1961 (जो केवल जिला एवं सेशन न्यायाधीशों के सम्बंध में थे), (2) केरल सबॉर्डिनेट मजिस्टेरियल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1962 और (3) तारीख 5 अक्तूबर, 1966 वाले केरल स्टेट ज्युडिशियल सर्विस रूल्स (स्पेशल रूल्स) प्रवृत्त रहे हैं, यह दर्शित करता है कि न्यायिक मजिस्ट्रेट पदों का न्यायिक सिविल पदों से

---
[1] ए० आई० आर० 1970 केरल 165.

एकीकरण नहीं हुआ था। यदि ऐसा है तो एकीकृत सेवा में से कुछ पदों को क्रमश: प्रदर्श पी-1 और पी-2 के अधीन प्रोन्नति के पृथक् साधन के लिए अलग निकालने का प्रश्न नहीं उठता जैसी कि पिटीशनर द्वारा दलील दी गई है और प्रदर्श पी-1 और पी-2 में विद्यमान विभाजन की स्कीम अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण करने वाली नहीं मानी जा सकती। मामले को इस दृष्टि से देखने पर इस न्यायालय द्वारा **मैसूर राज्य बनाम कृष्णमूर्ति और अन्य**[1] में किए गए विनिश्चय पर जिसका मूल पिटीशनर के काउन्सेल द्वारा अवलम्ब लिया गया है, हमारे द्वारा विचार किया जाना अनावश्यक है, क्योंकि उस विनिश्चय का विनिश्चयाधार प्रस्तुत मामले पर लागू नहीं होता। उस मामले में मैसूर स्टेट अकाउंट सर्विसेज काडर एण्ड रिक्रूटमेंट रूल्स, 1959 की जांच करने पर उच्च न्यायालय का निष्कर्ष था कि लोक निर्माण विभाग लेखा इकाई और स्थानीय निधि लेखा परीक्षा इकाई के बीच राज्य लेखा नियन्त्रक के सामान्य प्रशासनिक नियन्त्रणाधीन स्पष्ट और पूर्ण एकीकरण हुआ था। पूर्ववर्ती पृथक् इकाइयों के अधिकारियों की अर्हताएं और हैसियत समरूप थी, उनका कार्य एक ही प्रकार का था भर्ती प्राधिकारी वे ही थे और पूर्ववर्ती पृथक् इकाइयों में प्रवेश के लिए अपनाए गए मानक और विहित परीक्षण समरूप थे इसलिए आक्षेपित अधिसूचनाओं को, जिनके परिणामस्वरूप उसी प्रवर्ग में दो खण्डों के अधिकारियों के बीच प्रोन्नति के अवसरों में स्पष्ट असमानता हुई थी, अवैध घोषित कर दिया गया था। हमारे समक्ष वाले प्रस्तुत मामले में स्पष्ट रूप से यह मत है कि प्रदर्श पी-1 और पी-2 के अनुसार विभाजन की स्कीम को चालू किए जाने से पूर्व केरल राज्य में न्यायिक सेवा का इस अर्थ में पूर्ण एकीकरण अस्तित्व में नहीं आया था कि दाण्डिक पक्ष के सभी मजिस्ट्रेट-पद (सभी जिला मजिस्ट्रेट और उपखण्ड मजिस्ट्रेट) सिविल पक्ष के अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के पदों से एकीकृत हो गए थे और, इसलिए ऐसी पूर्ण एकीकृत न्यायिक सेवा अस्तित्व में न आने के कारण राज्य सरकार को इस बात की छूट थी कि वह सेवा को दो खण्डों में, अर्थात्, सिविल खण्ड और दाण्डिक खण्ड में, क्रमश: प्रदर्श पी-1 और पी-2 के अधीन की गई रीति से विभाजित करे और उसमें विनिर्दिष्ट विशेष प्रकार के विकल्प का उपबंध करे और अनुच्छेद 14 और 16 का कोई अतिक्रमण नहीं हुआ है।

---

[1] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 1146=[1973] 1 उम० नि० प० 355.

11. आनुकल्पिक रूप से, इस उपधारा पर अग्रसर होते हुए कि केरल राज्य में प्रदर्श पी-1 और पी-2 के अधीन विभाजन की स्कीम प्रारम्भ किए जाने से पूर्व न्यायिक सेवा का पूर्ण एकीकरण अस्तित्व में आ गया था, जैसा कि हमारे विद्वान बंधु न्यायाधिपति सिंघल का निष्कर्ष है, हमारे अवधारण के लिए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या उक्त आक्षेपित आदेशों में विद्यमान विभाजन की स्कीम, उसमें उपदर्शित विकल्प सहित, और दो खण्डों को गठित करने लिए बनाए गए नियमों के दो संवर्ग संविधान के अनुच्छेद 14 या 16 का अतिक्रमण करते हैं। जैसा कि पहले ही बता दिया गया है, नियम स्वयं विकल्प का उपबंध नहीं करते और विभेद के दोष से मुक्त हैं किन्तु जिस प्रतिकूल विभेद का परिवाद किया गया है वह उस विकल्प पर केन्द्रित है जिसे प्रदर्श पी-1 के आक्षेपित आदेश में विनिर्दिष्ट किया गया है। आक्षेपित आदेश का सुसंगत उपबंध पैरा 3 (i) में है, जो निम्नलिखित रूप में है

> "3 (i) उन सभी सिविल न्यायिक अधिकारियों को विकल्प दिया जाएगा जो मूल रूप से मजिस्ट्रेट थे, चाहे उनकी केरल राज्य न्यायिक सेवा के पूर्ण सदस्यों के रूप में पुष्टि हुई हो या न हुई हो।"

यह बताया गया है कि उपर्युक्त उपबंध एक एकीकृत सेवा के सभी सिविल न्यायिक अधिकारियों को दो समूहों में वर्गीकृत करता है, अर्थात् वे अधिकारी जो 'मूल रूप से मजिस्ट्रेट' थे, और वे अधिकारी जो मल रूप से मजिस्ट्रेट नहीं थ और जिला मजिस्ट्रेटों तक प्रोन्निति के अवसरों सहित न्यायपालिका के दाण्डिक खण्ड में जाने का विकल्प केवल पूर्ववर्ती समूह के अधिकारियों तक सीमित है और इस बात पर जोर दिया गया है कि विभाजन की स्कीम जिसमें ऐसा प्रतिबंधित विकल्प है, विभेदकारी है क्योंकि उसी प्रकार का विकल्प देने के अवसर से दूसरे वर्ग के अधिकारिग्रों को वंचित किया गया है। इसके विपरीत केरल राज्य के काउन्सेल श्री लाल नारायण सिन्हा ने दलील दी थी कि यह प्रश्न किया प्रदर्श पी-1 के पैरा 3 (i) में विनिर्दिष्ट विकल्प इस प्रकार सीमित था जैसा कि मूल पिटीशनर के काउन्सेल द्वारा सुझाया गया है, उक्त उपबंध में आने वाले 'मूल रूप से मजिस्ट्रेट' शब्दों के समुचित अर्थान्वियन पर निर्भर करता है। उसके अनुसार 'मूल रूप से' अभिव्यक्ति का अर्थान्वियन 'स्कीम से पूर्व या ठीक पहले' के अर्थ में किया जा सकता है और इस प्रकार अर्थान्वियन किए

जाने पर 'मूल रूप से मजिस्ट्रेट' वाक्यांश का अर्थ यह होगा कि विकल्प उन सभी अधिकारियों के फायदे के लिए आशयित था जो मजिस्ट्रेट थे और जिन्होंने किसी भी समय किन्तु स्कीम को प्रवर्तित किए जाने से पूर्व मजिस्ट्रेटों के रूप में कार्य किया था। इसका परिणाम यह होगा कि मूल पिटीशनर के काउन्सेल द्वारा सुझाया गया प्रतिकूल व्यवहार नहीं रहेगा। उसने कहा है कि उस उद्देश्य को, अर्थात् 'दाण्डिक पक्ष में न्याय के श्रेष्ठतर प्रशासन को सुनिश्चित करने के उद्देश्य' को ध्यान में रखते हुए जिसके लिए उच्च न्यायालय ने विभाजन की स्कीम की सिफारिश की थी, 'मूल रूप से मजिस्ट्रेट' वाक्यांश का प्रयोग उन सभी सिविल न्यायिक अधिकारियों के फायदे के आशय से ही किया गया होगा जिन्हें स्कीम प्रारम्भ किए जाने से पूर्व किसी न किसी समय दाण्डिक पक्ष का अनुभव प्राप्त हुआ था। हमारे मतानुसार पैरा 3 (i) में आने वाले 'मूल रूप से मजिस्ट्रेट' वाक्यांश के दो अर्थान्वियन हो सकते है एक वह जो मूल पिटीशनर की ओर से सुझाया गया है और दूसरा वह जो राज्य की ओर से श्री सिन्हा ने सुझाया है और यह स्पष्ट है कि चूंकि मूल पिटीशनर के काउन्सेल द्वारा सुझाया गया अर्थान्वियन असांविधानिकता की ओर ले जाएगा, अतः दूसरे अर्थान्वियन को, जो उपबंध को अनुच्छेद 14 या 16 के अधीन विभेद के दोष से मुक्त कर देता है, अधिमान्यता देनी होगी। इस प्रतिपादना के लिए इस न्यायालय की पर्याप्त नज़ीर है कि जहां दो अर्थान्वियन सम्भव हों वहां उस अर्थान्वियन से बचा जाना चाहिए जिससे असांविधानिकता होती है और दूसरे को, जो उपबंध को सांविधानिक बना देता है, अपनाया जाना चाहिए, चाहे इसके लिए भाषा पर कुछ दबाव ही आवश्यक क्यों न हो। इसके अतिरिक्त श्री सिन्हा द्वारा सुझाया गया अर्थान्वियन उस उद्देश्य के अनुरूप है जिसके लिए उच्च न्यायालय ने विभाजन की स्कीम की सिफारिश की थी। इन परिस्थितियों में, हम प्रदर्श पी-1 के पैरा 3 (i) में 'मूल रूप से मजिस्ट्रेट' वाक्यांश का अर्थान्वियन तदनुसार करते है और यह अभिनिर्धारित करते हैं कि उसमें विद्यमान विकल्प उन सभी अधिकारियों के फायदे के लिए आशयित था और है जो मजिस्ट्रेट थे और जिन्होंने स्कीम को प्रवर्तित किए जाने से पूर्व या ठीक पहले किसी समय मजिस्ट्रेटों के रूप में कार्य किया था और हमें इस बात में कोई संदेह नहीं है कि केरल राज्य उपदर्शित रिट से विकल्प का फायदा देगा उपर्युक्त अर्थान्वियन को ध्यान में रखते हुए जो हमने प्रदर्श पी-1 के पैरा

3 (i) में आने वाले 'मूल रूप से मजिस्ट्रेट' वाक्यांश का किया है, यह स्पष्ट है कि प्रतिकूल व्यवहार के परिवाद में कोई सार नहीं है और इसलिए प्रदर्श पी-1 और पी-2 संविधान के अनुच्छेद 14 या 16 का अतिक्रमण नहीं करते ।

12. परिणामस्वरूप, अपीलें मंजूर की जाती है और 1973 की मूल पिटीशनर सं० 3639 में उच्च न्यायालय द्वारा किए गए तारीख 8 फरवरी 1974 वाले निर्णय और आदेश को आपास्त किया जाता है। परिस्थितियों को देखते हुए खर्चे के वारे में कोई आदेश नहीं है ।

न्यायाधिपति पी० एन० सिंघल के मतानुसार

न्यायाधिपति सिंघल—

विशेष इजाजत लेकर की गई ये अपीलें केरल उच्च न्यायालय के तारीख 8 फरवरी, 1974 वाले निर्णय के विरुद्ध की गई हैं । अपील सं० 2060 केरल राज्य द्वारा फाइल की गई है जबकि अपील सं० 2048 एस० सुकुमारन नायर और ओ० जे० एंटनी द्वारा फाइल की गई है जिन्हें प्रारम्भ में क्रमशः ट्रावनकोर-कोचीन और केरल राज्यों की सेवा में मजिस्ट्रेटों के रूप मे नियुक्त किया गया था । अपीलार्थी इसलिए व्यथित अनुभव कर रहे हैं कि उच्च न्यायालय ने एम० के० कृष्णन नायर (एक अधीनस्थ न्यायाधीश) की रिट पिटीशन मंजूर कर ली है और सरकारी आदेशों, प्रदर्श पी-1 (तारीख 12 फरवरी, 1973 वाला) और प्रदर्श पी-2 (तारीख 18 सितम्वर, 1973 वाला) केरल सिविल ज्यूडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 और केरल क्रिमिनल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 को 'पूर्ण रूप से अवैध घोषित कर दिया' है ।

14. एम० के० कृष्णन नायर (रिट पिटीशनर) को केरल न्यायिक सेवा में 10 जून, 1958 को मुंसिफ के रूप में नियुक्त किया गया था । उसकी 1 अप्रैल, 1970 से तब पुष्टि की गई थी जव वह मुंसिफ के रूप में कार्य कर रहा था । उसने उपखण्ड मजिस्ट्रेट, अल्वाया के रूप में कार्य किया और कुछ दिन के लिए जिला मजिस्ट्रेट के रूप में अतिरिक्त भार सम्भाला । उसके पश्चात् उसे मुंसिफ के पद पर लगा दिया गया । उसे 3 अक्तूबर, 1968 को अधीनस्थ न्यायाधीश के रूप में प्रोन्नत किया गया था और उसकी उस पद पर पुष्टि की गई थी । उसने सिविल

और दाण्डिक न्यायपालिका के लिए सिविल पक्ष में अधीनस्थ न्यायाधीश और मुंसिफों वाले और दाण्डिक पक्ष में जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक), उपखण्ड मजिस्ट्रेट, अपर प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट और अधीनस्थ मजिस्ट्रेटों वाले पृथक्-पृथक् खण्डों के गठन के लिए, जिन्हें बाद में केरल सिविल न्यायिक सेवा और केरल दाण्डिक न्यायिक सेवा के रूप में जाना गया है, राज्य सरकार के तारीख 12 फरवरी, 1973 वाले आदेश प्रदर्श पी-1 के जारी किए जाने से व्यथित अनुभव किया। रिट पिटीशनर की वास्तविक व्यथा यह थी कि राज्य सरकार ने दाण्डिक खण्ड में जाने का विकल्प केवल उन्हीं अधिकारियों को दिया था जो मूल रूप से मजिस्ट्रेट थे और उसे नहीं दिया था, क्योंकि वह उस अर्हता को पूरा नहीं करता था। उसकी दलील यह थी कि अनेक ऐसे अधिकारियों को जो न्यायिक सेवा में उससे कनिष्ठ थे, किन्तु जिन्हें मूल रूप से मजिस्ट्रेटों के रूप में भर्ती किया गया था, असम्यक् रूप से फायदा हो गया था और उन्हें जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक) के रूप में नियुक्त किया जा रहा था। इसलिए, रिट पिटीशनर ने सरकारी आदेश प्रदर्श पी-1 और तारीख 18 सितम्बर, 1973 वाले एक अन्य आदेश, प्रदर्श पी-2 को, जिसमें कुछ विकल्पों को स्वीकार किया गया था, विधि विरुद्ध, विभेदकारी और उसकी तरह के उन लोगों के लिए, जो सिविल न्यायपालिका के थे, अनुचित कहकर चुनौती दी। प्रत्यर्थी-राज्य, सुकुमारन नायर प्रत्यर्थी सं० 3 और ओ० जे० एंटनी प्रत्यर्थी सं० 4 ने रिट पिटीशनर के दावे का विरोध किया। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, उच्च न्यायालय ने रिट पिटीशन मंजूर कर लिया है और उससे ये दो अपीलें उत्पन्न हुई हैं।

15. इस प्रकार इन अपीलों में विवाद का सम्बन्ध उपर्युक्त आदेशों और केरल सिविल ज्यूडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 और केरल क्रिमिनल ज्यूडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 की विधिमान्यता से है जिन्हें उसके पश्चात् शीघ्र ही बनाया गया था। तथापि, सुसंगत तथ्यों का समय-क्रम से संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक है ताकि विवाद को समुचित रूप से समझा जा सके।

16. भूतपूर्व ट्रावनकोर-कोचीन राज्य में, जिसका अन्ततोगत्वा केरल राज्य में विलय हो गया, मुंसिफों की भर्ती ट्रावनकोर-कोचीन मुंसिफ्स रिक्रूटमेंट रूल्स, 1953 द्वारा शासित होती थी। केरल राज्य का निर्माण 1 नवम्बर, 1956 को हुआ था और उसमें (मद्रास राज्य को अन्तरित

किए गए क्षेत्रों को छोड़कर) ट्रावनकोर-कोचीन राज्य, मालाबार जिला (उसके छोटे से भाग को छोड़कर) और दक्षिण कनारा जिले का कासरगोड तालुक थे। फिर ट्रावनकोर-कोचीन नियमों का स्थान केरल ज्युडिशियल सर्विस (रिक्रूटमेंट ऑफ मुंसिफ्स) रूल्स, 1957 ने ले लिया जिन्हें उन नियमों में उपयुक्त संशोधन करके बनाया गया था। न्यायिक अधिकारियों की सेवाओं के एकीकरण की समस्या को सुलझाना था और राज्य सरकार ने इस प्रयोजन के लिए तारीख 27 मई, 1958 वाला सरकारी आदेश सं० 9585 एस० आई० 5-57 पी० डी० जारी किया जिसमें, अन्य बातों के साथ-साथ, ट्रावनकोर-कोचीन और मद्रास राज्यों के पदों के समीकरण के लिए आधार का उपबन्ध था। समीकरण में सभी प्रवर्गों के पद, अर्थात्, जिला न्यायाधीश (ग्रेड 1 और 2), जिला मजिस्ट्रेट, अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश, अधीनस्थ न्यायाधीश, उपखण्ड मजिस्ट्रेट ग्रेड 1, मुंसिफ और उपखण्ड मजिस्ट्रेट ग्रेड 2, जिला मुंसिफ और अधीनस्थ मजिस्ट्रेट पर विचार किया गया था। तारीख 24 सितम्बर, 1959 वाले सरकारी आदेश सं० एम० एस० 850 द्वारा केरल ज्युडिशियल सर्विस (रिक्रूटमेंट ऑफ मुंसिफ्स) रूल्स में आंशिक संशोधन किया गया था जिससे उन जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मिजस्ट्रेट ग्रेड 1 और 2 को अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों के रूप मे नियुक्ति के लिए पात्र बनाया गया था जिनके पास भारत के किसी विश्वविद्यालय की विधि की डिग्री थी या जो बैरिस्टर-एट-लॉ थे। इसके साथ ही तारीख 24 सितम्बर, 1959 वाला सरकारी आदेश सं० एम० एस० 851 पब्लिक (इंटेग्रेशन) उच्च न्यायालय के कहने पर जारी किया गया जिसके द्वारा तारीख 27 मई, 1958 वाले सरकारी आदेश सं० 9585 को पदों के समीकरण के सम्बन्ध में आंशिक रूप से उपान्तरित किया गया और जिला मजिस्ट्रेटों के तीन पद और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के आठ पद सिविल न्यायपालिका के बाहर पृथेक् सेवा गठित करने के लिए आरक्षित रखे गए ताकि उनके पदधारी उन पदों पर बने रहें। तथापि यह विनिर्दिष्टरूप से उपबन्ध किया गया था कि वे पद (जो सिविल न्यायपालिका के बाहर रखे गए थे) उस समय समाप्त हो जाएंगे जब उनके पदधारी उन्हें सेवानिवृत्ति या प्रोन्नति द्वारा या अन्यथा खाली कर देंगे और उनके स्थान पर आवश्यकता के अनुसार उपयुक्त सिविल न्यायिक पदों का सृजन कर लिया जाएगा। यह निदेश भी दिया गया था कि (ट्रावनकोर-कोचीन)

शाखा के उन जिला मजिस्ट्रेटों और उपखण्ड मजिस्ट्रेटों को जिन्हें उच्च न्यायालय द्वारा उपयुक्त पाया जाएगा, जब कभी सम्भव होगा सिविल न्यायपालिका में ले लिया जाएगा।

17. तारीख 11 जुलाई, 1961 वाली अधिसूचना द्वारा केरल राज्य उच्चतर न्यायिक सेवा के लिए भी विशेष नियम बनाए गए थे।

18. तारीख 16 दिसम्बर, 1961 वाली अधिसूचना सं० जी० ओ० (एम० एस०) 718 संविधान के अनुच्छेद 234 और 235 के उपबन्धों को 1 नवम्बर, 1956 से राज्य के सभी वर्गों के न्यायिक मजिस्ट्रेटों को उसी रूप में लागू करते हुए जारी की गई थी जिस रूप में वे राज्य की न्यायिक सेवा में नियुक्त व्यक्तियों को लागू होते थे।

19. इसके पश्चात् केरल सबॉर्डिनेट मजिस्ट्रेट सर्विस रूल्स, 1962 जारी किए गए थे। उन नियमों में केवल अपर प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेटों और अधीनस्थ मजिस्ट्रेटों की पृथक् सेवा के गठन के लिए उपबन्ध था।

20. फिर भी केरल राज्य न्यायिक सेवा में न्यायिक अधिकारियों की सेवाओं के एकीकरण की प्रक्रिया को पूरा किया जाना आवश्यक था। इसलिए तारीख 11 फरवरी, 1966 वाली अधिसूचना सं० 3870/सी 3/66 होम संविधान के अनुच्छेद 234, सपठित अनुच्छेद 309 का परन्तुक, के अधीन जारी की गई थी जिसके द्वारा केरल राज्य न्यायिक सेवा में ट्रावनकोर-कोचीन शाखा के उन दाण्डिक न्यायिक अधिकारियों के आमेलन के लिए तदर्थ नियम बनाए गए थे जो उपर्युक्त तारीख 24 सितम्बर, 1959 वाले सरकारी आदेश सं० एम० एस० 850/851/59 पब्लिक (इंटेग्रेशन) और तारीख 24 जुलाई, 1961 वाले सरकारी आदेश सं० एम० एस० 594/61/पब्लिक (इंटेग्रेशन) के अधीन गठित पृथक् सेवाओं से सम्बन्धित थे। उन नियमों में यह उपबन्ध अभिव्यक्त रूप से किया गया था कि भूतपूर्व ट्रावनकोर-कोचीन राज्य के ऐसे मजिस्ट्रेट-अधिकारी जो जिला मजिस्ट्रेटों के पद धारण किए हुए हैं केरल राज्य न्यायिक सेवा में अधीनस्थ न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति के पात्र होंगे और जो उपखण्ड मजिस्ट्रेट के पदों को धारण किए हुए हैं वे मुंसिफों के रूप में नियुक्ति के पात्र होंगे, यदि वे किसी भारतीय विश्वविद्यालय के विधि स्नातक हैं या बैरिस्टर-एट-लॉ हैं। नियम (iii) में यह उपबंध था कि इस प्रकार नियुक्त व्यक्ति फिर "केरल राज्य न्यायिक सेवा के सदस्य बन जाएंगे और

परिवीक्षा, उन्मोचन, पूर्ण सदस्यता और प्रोन्नति सहित सभी विषयों में (उन) नियमों द्वारा शासित होंगे ।" उनकी जिला न्यायाधीशों या अधीनस्थ न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति के लिए और एकीकृत सेवा में उनकी ज्येष्ठता के लिए भी उपबन्ध किया गया था ।

21. फिर तारीख 5 अक्तूबर, 1966 वाली अधिसूचना जी० ओ० (पी) संख्या 368/66 होम जारी की गई जिसके द्वारा संविधान के अनुच्छेद 234 तथा 235 और अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन विशेष नियम बनाए गए । उन नियमों को केरल स्टेट ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1966 कहा गया । उनमें अधिकारियों के दो प्रवर्गों का, अर्थात्, अधीनस्थ न्यायाधीशों [जिस पद में जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक) के रूप में नियुक्त अधीनस्थ न्यायाधीश सम्मिलित थे] और मुंसिफों (जिस पद में उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के रूप में नियुक्त मुंसिफ सम्मिलित थे) के लिए उपबन्ध था । यह उपबन्ध अभिव्यक्त रूप से किया गया था कि अपर प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट और अधीनस्थ मजिस्ट्रेट अन्तरण द्वारा मुंसिफ के रूप में नियुक्ति के पात्र होंगे ।

22. इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि उपर्युक्त नियमों और आदेशों में केरल राज्य की सेवा या सेवाओं में न्यायिक अधिकारियों के सभी प्रवर्गों के एकीकरण का पूर्ण उपबन्ध था । केरल ज्युडिशियल सर्विस (रिक्रूटमेंट ऑफ मुंसिफ्स) रूल्स, केरल स्टेट हायर ज्युडिशियल सर्विस रूल्स और केरल सबॉर्डिनेट मैजिस्टीरियल रूल्स सभी प्रवर्गों के पदों और अधिकारियों को लागू होते थे । इसलिए यदि यह मान भी लिया जाए कि किसी एक अधिकारी का मामला उसकी एकीकृत ढांचे में नियुक्ति या उसकी ज्येष्ठता, वेतन आदि के निश्चित किए जाने के प्रयोजन से अन्तिम रूप दिए जाने से रह गया तो भी उससे इस दलील का औचित्य सम्भव नहीं हो सकता कि एकीकरण की प्रक्रिया अपूर्ण रह गई । इसलिए मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष सही है कि उन पदों का एकीकरण हुआ था जो प्रस्तुत विवाद की विषयवस्तु हैं और उसमें हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है । वास्तव में यह बात केरल राज्य की ओर से श्री लाल नारायण सिन्हा ने अभिव्यक्त रूप से स्वीकार कर ली थी कि वास्तव में ऐसा ही हुआ था । दूसरे पक्ष का काउन्सेल कोई संतोषजनक दलील नहीं दे सका कि उपर्युक्त सरकारी आदेशों और

नियमों को देखते हुए यह कैसे कहा जा सकता था कि एकीकरण का कार्य पूर्ण नहीं हुआ था।

23. तथापि उच्च न्यायालय ने उपर्युक्त आदेश प्रदर्श पी-1 और पी-2 तथा 1973 वाले नियमों के दो संवर्गों को निम्नलिखित दो कारणों से अवैध घोषित कर दिया—

(i) एकीकृत सेवाओं में से सिविल और दाण्डिक खण्डों को बनाना और मजिस्ट्रेट-अधिकारियों के लिए प्रोन्नति के पृथक् अवसर निकालना विभेदकारी और अयुक्तियुक्त था,

(ii) दाण्डिक न्यायपालिका में जाने के लिए केवल उन अधिकारियों तक विकल्प को निर्बन्धित करना भी जो (मूल रूप से) मजिस्ट्रेट थे विभेदकारी और अयुक्तियुक्त था।

इसलिए मैं इन कारणों की जांच करूंगा किन्तु ऐसा करने से पूर्व यह भी उल्लेखनीय है कि उच्च न्यायालय ने वास्तव में इन दो विषयों पर पृथक्-पृथक् रूप से या एक को दूसरे से भिन्न या स्वतन्त्र मानकर विचार नहीं किया है अपितु उन पर मुख्य रूप से उन अधिकारियों तक जो मूल रूप से मजिस्ट्रेट थे, विकल्प को सीमित करने वाले आदेश की विधिमान्यता के प्रति निर्देश से विचार किया है। यह निष्कर्ष निकालने में उच्च न्यायालय ने उन दलीलों का सहारा लिया है जो उसके समक्ष संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के प्रति निर्देश से दी गई थीं।

24. तारीख 12 फरवरी, 1973 वाले सरकारी आदेश सं० एम० एस० 24/73 होम (प्रदर्श पी–1) में यह तथ्य प्रकट किया गया है कि "न्याय के श्रेष्ठतर प्रशासन" के लिए "दाण्डिक न्यायपालिका" और "सिविल न्यायपालिका" के लिए पृथक् खण्ड गठित करने का प्रश्न पिछले कुछ समय से सरकार के विचाराधीन था, सरकार ने इस विषय पर विस्तार से विचार किया था और "उच्च न्यायालय के परामर्श से" क्रमशः सिविल और दाण्डिक न्यायपालिका के लिए दो पृथक् खण्ड गठित करने का विनिश्चय किया था जिनमें सिविल पक्ष में अधीनस्थ न्यायाधीश और मुंसिफ थे और दाण्डिक पक्ष में जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक) उपखण्ड मजिस्ट्रेट, मुंसिफ, अपर प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट और अधीनस्थ मजिस्ट्रेट थे। शेष आदेश इन दो सेवाओं के लिए पृथक् नियम बनाने के विषय में है दाण्डिक

पक्ष में जाने के विकल्प का प्रयोग (जिस पर पृथक् रूप से विचार किया जाएगा) : उन लोगों की नियुक्ति जिन्होंने नई दाण्डिक न्यायिक सेवा का विकल्प दिया था, उस सेवा के सदस्यों के लिए उपखण्ड मजिस्ट्रेटों के पदों का उन्मोचन और उन लोगों को बनाए रखना जिन्हें 'स्कीम' के कार्यान्वयन की तारीख को या उससे पूर्व जिला मजिस्ट्रेटों के रूप में नियुक्त किया गया था । इस प्रकार आदेश में ऐसी कोई बात नहीं है जिसके विषय में यह कहा जा सके कि वह, जहां तक एकीकृत न्यायिक सेवाओं का दाण्डिक और सिविल खण्डों में विभाजन का सम्बन्ध है, संविधान के अनुच्छेद 14 द्वारा गारंटीकृत समानता के अधिकार के विरुद्ध है । इसी प्रकार यह दर्शित करने वाली कोई बात भी नहीं है कि दो सेवाओं का सृजन अनुच्छेद 16 के अर्थ में लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता से वंचित करता है ।

25. दूसरा आदेश पी-2 तारीख 18 सितम्बर, 1973 वाला संख्या जी० ओ० एम० एस० 157/73 होम है । इसमें प्रदर्श पी-1 वाले आदेश का उल्लेख है और इसमें उसके अधीन अधिकारियों द्वारा प्रयोग किए गए विकल्प को और उनके लिए पदों के उन्मोचन को सरकार की स्वीकृति दी गई है । जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, मैं विकल्प के प्रश्न पर पृथक् रूप से विचार करूंगा । यह भी उल्लेखनीय है कि पदों के उन्मोचन का प्रश्न हमारे समक्ष दलीलों में उत्पन्न नहीं हुआ है क्योंकि इसे विधि-विरुद्ध कहकर चुनौती नहीं दी गई है । इसलिए प्रदर्श पी-2 पूर्ववर्ती आदेश प्रदर्श पी-1 को कार्यान्वित करने वाला आदेश है और इसे अनुच्छेद 14 या 16 का अतिक्रमण करने वाला नहीं कहा जा सकता ।

26. यह उल्लेखनीय है कि संविधान या किसी अन्य विधि में ऐसी कोई बात नहीं है जो राज्य को, उसकी आवश्यकतानुसार, एक या अधिक राज्य सेवाओं का सृजन करने से या किसी विद्यमान सेवा को दो या अधिक सेवाओं में विभाजित करने से रोकती हो । वास्तव में संविधान का अनुच्छेद 309 द्वारा, राज्य के मामलों के सम्बन्ध में लोक सेवाओं और पदों पर भर्ती और नियुक्त किए गए व्यक्तियों की सेवा की शर्तों को नियमित करने के लिए, अधिनियम और नियम बनाना अनुध्यात और इस मामले में यह दर्शित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य है कि यद्यपि 1 नवम्बर, 1956 को केरल राज्य के निर्माण पर यह विचार किया गया

था कि उपर्युक्त एकीकृत सेवाएं न्यायिक सेवाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति कर देंगी तथापि बाद में उच्च न्यायालय ने अनुभव किया कि "अधीनस्थ न्यायपालिका के सिविल और दाण्डिक खण्डों को पृथक् करना" आवश्यक है। इस सम्बन्ध में उच्च न्यायालय के तारीख 4 मार्च, 1970 और 12 मई, 1970 वाले पत्रों का उल्लेख किया जा सकता है जो यह दर्शित करते है कि विभाजन की स्कीम उच्च न्यायालय के कहने पर "न्याय के श्रेष्ठतर प्रशासन को सुनिश्चित करने के लिए" चालू की गई थी। इस प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय ने केवल अपने विस्तृत प्रस्ताव ही नहीं भेजे अपितु दो सेवाओं के गठन के लिए बनाए जाने वाले नियमों के लिए भी अपने प्रस्ताव भेजे।

27. जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, ये नियम केरल सिविल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 और केरल क्रिमिनल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 हैं। ये दोनों नियम उन सभी नियमों और विनियमों को अधिक्रान्त करते हुए बनाए गए हैं जो नियमों की विषयवस्तु पर उस समय, प्रवर्तित थे। केरल सिविल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 में, अन्य बातों के साथ-साथ, अधीनस्थ न्यायाधीशों और मुंसिफों की सेवा के गठन के लिए, उनकी नियुक्ति के ढंग, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की भर्ती, मुंसिफों के रूप में नियुक्ति के लिए चयन किए गए अधिकारियों के प्रशिक्षण, उनकी न्यूनतम अर्हताओं और परिवीक्षा की अवधि आदि के लिए उपबन्ध हैं। शेष नियम 18 केरल क्रिमिनल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 के लिए अधिकारियों के 'विकल्प' के विषय में है, किन्तु इस विषय पर पृथक रूप से विचार किया जाएगा। इस प्रकार केरल सिविल ज्युडिशियल सर्विस रुल्स, 1973 में ऐसी कोई बात नहीं है जिसे किसी भी कारण से विभेदकारी या संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अतिक्रमण करने वाली कहा जा सकता है।

28. यही स्थिति केरल क्रिमिनल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 के विषय में है। यह भी इस बात के सिवाय केरल सिविल ज्युडिशियल सर्विस के अन्तर्गत आने वाले विषयों में है कि सेवा में जिला मजिस्ट्रेट, उपखण्ड मजिस्ट्रेट, अपर प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट और अधीनस्थ मजिस्ट्रेट हैं। नियमों का नियम 18 (ii) 'विकल्प' के सम्बन्ध में है। किन्तु उस विषय पर भी पृथक् रूप से विचार किया जाएगा। अन्यथा

यह विचार करने का कोई कारण नहीं है कि नियम किसी भी कारण से अविधिमान्य है।

29. आदेश प्रदर्श पी-1 (तारीख 12 फरवरी, 1973 वाला सरकारी आदेश संख्या एम० एस० 24/73/होम) द्वारा दिए गए विकल्प की विधिमान्यता के प्रश्न पर हमारे समक्ष विवाद पैरा 3(i) के निम्नलिखित भाग के सम्बन्ध में है —

*"3(i) उन सभी सिविल न्यायिक अधिकारियों को विकल्प दिया जाएगा जो मूल रूप से मजिस्ट्रेट थे, चाहे उनकी केरल राज्य न्यायिक सेवा के पूर्ण सदस्यों के रूप में पुष्टि की गई हो या न की गई हो।"

इस बात पर जोर दिया गया है कि जब सेवाओं का एकीकरण किया गया था, तब उस सेवा के सदस्यों को केरल दाण्डिक न्यायिक सेवा में नियुक्ति के विषय में पृथक मानना विभेदकारी था। इसी कारण से सरकारी आदेश संख्या एम० एस० 157/73 होम (प्रदर्श पी-2) की विधिमान्यता पर आक्षेप किया गया है क्योंकि इसके अधीन राज्य सरकार ने उसमें उल्लिखित 14 अधिकारियों का विकल्प स्वीकार कर लिया है।

30. जहां तक सेवा नियमों का सम्बन्ध है, केरल सिविल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 के नियम 18 में निम्नलिखित उपबन्ध है—

**"18. अन्तर्कालीन उपबन्ध--इन नियमों में किसी बात के होते हुए भी, जिन अधिकारियों के केरल दाण्डिक न्यायिक सेवा के लिए विकल्प सरकार द्वारा तारीख 18 सितम्बर, 1973 वाले सरकारी आदेश संख्या एम० एस० 157/73/होम में स्वीकार कर

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

*"3 (i) Option will be allowed to all Civil Judicial Officers originally borne on the Magistracy irrespective of whether or not they have been confirmed as full members of the Kerala State Judicial Services."

**"18. Transitory Provisions: Notwithstanding anything contained in these rules, the officers, whose options to the Kerala Criminal Judicial Service have been accepted by Government in G. O. MS 157/73/Home dated Sept. 18,

लिए गए है, उन्हें केरल न्यायिक सेवा में उनके वर्तमान पदों पर तब तक बनाए रखा जाएगा जब तक कि उनकी नियुक्ति केरल दाण्डिक न्यायिक सेवा में नहीं कर दी जाती ।"

केरल क्रिमिनल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 में तत्स्थानी उपबन्ध, जिस पर आपत्ति की गई है, नियम 18 (ii) है जिसमें सरकार द्वारा तारीख 18 सितम्बर, 1973 वाले सरकारी आदेश संख्या एम० एस० 157/73/होम (प्रदर्श पी-2) में स्वीकार किए गए विकल्पों का उल्लेख है और उस समय तक उनके केरल सिविल न्यायिक सेवा में अपने पदों पर बने रहने का उल्लेख है जब तक कि उन्हें केरल दाण्डिक न्यायिक सेवा में, उनकी दाण्डिक खण्ड में मूल ज्येष्ठता के अनुसार, नियुक्ति न कर दी जाए।

31. राज्य सरकार ने केरल दाण्डिक न्यायिक सेवा में जाने के विकल्प पर निर्बन्धन को पिछले इतिहास और सुसंगत समय पर विद्यमान तथ्यात्मक स्थिति के आधार पर उचित ठहराने का प्रयास किया है। राज्य के काउन्सेल श्री लाल नारायण सिन्हा ने दलील दी है कि नियमों से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि अधीन न्यायाधीश की प्रोन्नति जिला न्यायाधीश के रैंक में है और यह तथ्य कि कभी-कभी अधीनस्थ न्यायाधीश को जिला मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त कर दिया जाता है, बिल्कुल संगत नहीं है । उसने यह दलील भी दी है कि किसी भी अधीनस्थ न्यायाधीश को जिला मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्ति का विशिष्ट अधिकार नहीं है और ऐसी नियुक्ति की आकस्मिकता ऐसा सारवान् फायदा नहीं है जिससे नियम अविधिमान्य हो जाए। फिर यह कहा गया है कि स्वयं कानूनी नियमों में विल्कप का उपबन्ध नहीं है और वे विभेद के दोष से मुक्त है ।

32. तथापि, यह सुस्थिर है कि यद्यपि अनुच्छेद 14 में आत्यंतिक प्रतिषेध प्रतीत होता है, तथापि यह वास्तव में आत्यंतिक नहीं है क्योंकि इसम वर्गीकरण के सिद्धान्त को न्यायिक विनिश्चयों द्वारा आमेलित कर दिया गया है । (**माखन लाल मल्होत्रा और अन्य बनाम भारत संघ**[1]) इस प्रकार अब इस बात पर विवाद नहीं है कि उस दशा में वर्गीकरण करने

1973 shall be allowed to continue in their present posts in in the Kerala Judicial Service till they are given posting in the Kerala Criminal Judicial Service."

[1] (1961) 2 एस० सी० आर० 120.

वाली विधि बनाना अनुज्ञेय है जब विधि ऐसे बोधगम्य अन्तर पर आधारित है जिसका विधि द्वारा प्राप्त किये जाने उद्देश्य से युक्तियुक्त सम्बन्ध है। इस बात पर भी विवाद नहीं किया जा सकता कि वर्गीकरण प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों पर आधारित हो सकता है या जैसा कि **श्री रामकृष्ण डालमिया बनाम श्री न्यायाधिपति एस० आर० तन्दोलकर और अन्य**[1] में अभिनिर्धारित किया गया था, यह व्यक्तियों के बीच अन्तर पर आधारित हो सकता है या किसी मामले में स्वयं विधि में वर्गीकरण या नियुक्ति के लिए चयन के विषय में सरकार के विवेकाधिकार का प्रयोग करने के मार्गदर्शन के लिए नीति या सिद्धान्त का उपबन्ध हो सकता है। यह भी हो सकता है कि अन्तर को उस दशा में मान्य ठहराया जाए जब वह ऐतिहासिक कारणों से, जैसे राज्यों के विलय के कारण, उत्पन्न हुआ हो (**भैयालाल शुक्ल बनाम मध्य प्रदेश राज्य**[2])। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या आदेश प्रदर्श पी-1 द्वारा किया गया वर्गीकरण, जिसमें विकल्प "उन सभी सिविल न्यायिक अधिकारियों तक सीमित रखा गया है जो मूल रूप से मजिस्ट्रेट थे" ऐसा वर्गीकरण है जो ऐसे बोधगम्य अन्तर पर आधारित है जिसमें उन व्यक्तियों को अन्य व्यक्तियों से प्रभेदित किया गया है जिन्हें विकल्प से बाहर छोड़ा गया था और अन्तरण का आदेश या उसे प्रभावी करने वाले नियमों द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से युक्तियुक्त सम्बन्ध है ?

33. यह दलील दी गई है कि केवल उन सिविल न्यायिक अधिकारियों के पक्ष में वर्गीकरण, जो मूल रूप से मजिस्ट्रेट थे, ऐसा बोधगम्य वर्गीकरण है जो बोधगम्य अन्तर पर आधारित है और इसका उद्देश्य न्यायपालिका के दण्डिक खण्ड का उपबंध करना है जिसे केरल क्रिमिनल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 के अधीन केवल उन अधिकारियों से गठित किया जाना है जिन्हें दाण्डिक कार्य या मजिस्ट्रेट-कार्य का कुछ अनुभव था। किन्तु यह दलील मान्य नहीं है क्योंकि ऐसा कोई कारण उस उद्देश्य की प्राप्ति के प्रयोजन से भी सम्भव नहीं हो सकता था कि उन सिविल न्यायिक अधिकारियों को, जो मूल रूप से मजिस्ट्रेट नहीं थे किन्तु जिन्होंने केरल राज्य के निर्माण के पश्चात् सेवाओं के एकीकरण के परिमाणस्वरूप मजिस्ट्रेट के रूप में अपनी नियुक्ति के पश्चात् मजिस्ट्रेट-कार्य का पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर लिया था, क्यों छोड़ दिया गया है। जैसा कि स्पष्ट है,

[1] (1959) ए स० सी० आर० 279.

[2] (1962) सप्लीमेण्ट 2 एस० सी० आर० 257.

आक्षेपित आदेशों (प्रदर्श पी-1 और पी०-2) द्वारा उन सिविल न्यायिक अधिकारियों के बीच जो "मूल रूप से मजिस्ट्रेट" थे, और उनके बीच जो बाद में किन्तु न्यायपालिका के तथाकथित दाण्डिक खण्ड के गठन से पूर्व मजिस्ट्रेट बने थे, वर्गीकरण अनुज्ञेय वर्गीकरण नहीं है और इसके विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि यह केरल दाण्डिक न्यायिक सेवा के पदों को सम्भालने के लिए कुशल सेवा का उपबन्ध करने के उद्देश्य से सम्बन्धित है या इसकी पूर्ति करता है।

34. ऐसा प्रतीत होता है कि इसी कारण श्री लाल नारायण सिन्हा ने उचित ही यह सुझाया है कि विकल्प उन अधिकारियों तक सीमित न हो जिन्हें मूल रूप में मजिस्ट्रेटों के रूप में नियुक्त किया गया था अपितु उन सब अधिकारियों को उपलभ्य हो जिन्हें मजिस्ट्रेटों के रूप में अनुभव है। प्रतिकूल मत के लिए कोई लाभदायक दलील नहीं दी गई है और ऐसा प्रतीत होता है कि श्री सिन्हा का सुझाव स्वीकार किये जाने योग्य है, क्योंकि इससे विकल्प का प्रयोग करने का उपबन्ध चुनौती-रहित हो जाएगा। वस्तुस्थिति यह है कि आक्षेपित आदेश और नियमों के आपत्तिजनक मांग, जो विकल्प को उन अधिकारियों तक निर्बन्धित करते हैं जो मूल रूप से मजिस्ट्रेट थे, शेष उपबन्धों से पृथक् किये जा सकते हैं और उच्च न्यायालय ने आदेशों और नियमों को "पूर्ण रूप से" अवैध घोषित करके स्पष्ट रूप से गलती की है।

35. इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि जब एक बार यह अभिनिर्धारित कर दिया जाता है कि एकीकृत सेवा का सिविल और दाण्डिक न्यायिक सेवा में विभाजन विधिमान्य था और राज्य में दाण्डिक न्यायिक सेवा के गठन के लिए पहले से मजिस्ट्रेट के कार्य के अनुभव की अपेक्षा विहित करना न्यायोचित था, तब इसे केवल इस आधार पर संविधान के अनुच्छेद 14 या 16 के अधीन चुनौती देना अनुज्ञेय नहीं होगा कि इसमें न्यायपालिका के मजिस्ट्रेट-खण्ड के लिए पृथक् प्रोन्नति के अवसर निकाले गए थे। जब पृथक् दाण्डिक न्यायिक सेवा 1973 वाले दो नियम-संवर्गों द्वारा विधिमान्य रूप से गठित की गई थी और उन नियमों में इसके गठन, अर्हताओं, भर्ती और उच्चतर पदों पर प्रोन्नति के ढंग का उपबन्ध था, तो यह युक्तियुक्त ही था कि सेवा के सदस्यों की प्रोन्नति उनके द्वारा शासित हो। वास्तव में इस न्यायालय में यह दलील नहीं दी गई है कि नियमों में प्रोन्नति से सम्बन्धित उपबन्ध किसी भी कारण से अविधिमान्य है और उसे

विभेदकारी या अयुक्तियुक्त कहा जा सकता है। इसलिए उच्च न्यायालय ने इसके प्रतिकूल मत अपनाकर गलती की है।

36. परिणामस्वरूप, अपीलें इस हद तक मंजूर की जाती हैं कि आक्षेपित आदेश प्रदर्श पी-1 और पी-2 को और केरल सिविल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 और केरल क्रिमिनल ज्युडिशियल सर्विस रूल्स, 1973 को, जिनमें केरल राज्य न्यायपालिका के सिविल और दाण्डिक खण्डों के गठन का उपबन्ध है, विधिमान्य अभिनिर्धारित किया जाता है, तथापि उन आदेशों और नियमों का वह भाग, जिसका सम्बन्ध विकल्प उन अधिकारियों तक निर्बन्धित करने से है, जो मूल रूप से मजिस्ट्रेट थे, अविधिमान्य है और उच्च न्यायालय के निर्णय को उस हद तक मान्य ठहराया जाता है। तथापि यह स्पष्ट किया जाता है कि सम्बन्धित अधिकारियों को आदेश प्रदर्श पी-1 और नियमों में ऐसा उपयुक्त संशोधन करने की अनुज्ञा होगी जिससे केरल दाण्डिक न्यायिक सेवा में जाने का विकल्प उन सभी अधिकारियों को दे दिया जाए जिन्हें उस तारीख को मजिस्ट्रेट-कार्य का पिछला अनुभव था जिसको वे नियम प्रवर्तित हुए थे। निस्संदेह इस प्रयोजन के लिए सम्बन्धित प्राधिकारी उन अधिकारियों को, जो इस निर्णय के परिणामस्वरूप दाण्डिक न्यायिक सेवा में जाने के लिये विकल्प का प्रयोग करने के लिये पात्र हो जाएंगे, नया अवसर देंगे। मामले की परिस्थितियों को देखते हुए इस न्यायालय में हुए खर्चे के बारे में कोई आदेश आवश्यक नहीं है।

आदेश

इस न्यायालय के बहुमत की राय को देखते हुए, अपीलें मंजूर की जाती हैं, किन्तु खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं है।

अपीलें मंजूर की गईं।

श्या०